"स्वामी जी! आप सच्च कहते हैं परन्तु साठ वर्ष का राम निकलता ही निकलेगा। जो लोग अविद्या में फँसे हैं इतनी जल्दी नहीं निकल सकते।"

६१. **क्या लाभ?–** वृन्दावन में स्वामी जी बड़ा खेद व्यक्त करते थे कि सेठ लक्ष्मी नारायण ने इतना रुपया इस मन्दिर पर लगाया जिससे न धर्म लाभ है न लोक-कल्याण। कितना अच्छा होता कि इतना धन एक पाठशाला पर व्यय होता जिससे वेद व संस्कृत का प्रचार होता।

६२. **हम पेट के मारे हैं:–** वृन्दावन में स्वामीजी महाराज से शास्त्रार्थ तो किसी ने नहीं किया। हाँ! पण्डित लोग नित्य प्रति प्रश्न तो गढ़-गढ़ कर लाते थे परन्तु सामने आते तो मौन साधने के अतिरिक्त और विकल्प ही नहीं होता था। स्वामी जी बारम्बार कहते जो तुम्हें कोई सन्देह है तो निवारण कर लो परन्तु उत्तर यही होता था, "आप सच्च कहते हैं परन्तु हम पेट के मारे सत्य नहीं कह सकते।"

६३. काशी में ला० माधोदास के बाग से प्रतिदिन फूलों की एक टोकरी उनके घर पर जाती थी। एक दिन महाराज ने पूछा, "यह टोकरी कहाँ जाती है?"

बोले, "घर ठाकुरों के लिये।"

बोले "खेद है आपने मूर्तिपूजा नहीं छोड़ी। यदि ये पुष्प पौधों से लगे रहते तो अत्यधिक सुगंधि देते और पंखड़ियाँ खाद का काम देतीं। यदि सुमन गुच्छा बनाकर घर पर रखते तो भी लाभप्रद होता परन्तु वहाँ तो सर्वथा निष्फल है।"

लाला जी ने कहा, "हमारे यहाँ तो सब मूर्तिपूजक हैं। न भेजो तो नित्य प्रति बाजार से क्रय करें। फिर कहिये हम क्या करें?" बोले ऐसी अवस्था में तो बहुत कठिन है।

६४. **मेरे दोनों लोग सुधर गये:–** लाला माधोदास के यहाँ स्वामी जी काशी में उतरे तो पण्डित ताराचरण तर्करत्न ने लाला जी को मिलने पर कहा, "आपने तो अपने दोनों

लोक बर्बाद क़र दिये जो दयानन्द को ठहराया है। तुम्हारा तो मुख देखना भी पाप है। अच्छा होगा यदि अभी जाकर उसे निकाल दें। यही तुम्हारा प्रायश्चित्त है।"

लाला जी ने कहा, "मैं आपसे शास्त्रार्थ करने नहीं आया। यदि करना हो तो मेरे निवास पर आओ अन्यथा मुझे तुमसे कुछ लेना–देना नहीं है।"

परन्तु कुछ ऐसा संयोग बना कि जब जून मास के अन्त में सन् १८७४ को स्वामी जी काशी पधारे तो राजा साहब ने बग्घी भेजकर महाराज जी को बुलवाया। उनसे अत्यन्त प्रेम से मिले। बहुत सेवा–सत्कार किया। तब ताराचरण भी वहीं उपस्थित थे। वहीं लाला माधोदास ने कहा, "ईश्वर का धन्यवाद है। आज मेरे दोनों लोक बन गये। महाराजा व आप दोनों ही उनके अनुसार हो गये–जिनसे मुझे रोका था।"

६५. **यदि विद्या प्रचार करते:–** स्वामी जी अहमदाबाद (गुजरात) गये तो एक बड़े सेठ जी आपको बुलाने स्टेशन पर आये। उन्होंने दो–तीन लाख रुपये लगाकर एक भव्य मन्दिर बनवाया था। मार्ग में वह लगे उसका गुणगान करने। स्वामी जी ने यह सुनकर बड़ा खेद व्यक्त किया और गाड़ी पर हाथ मारकर कहा, "इतना धन तुमने पत्थर पर गँवाया। यदि विद्या–प्रचार में लगते तो वेदाध्ययन करने वाले ब्राह्मण जगत् को लाभान्वित करते। ऐसी ही मूर्खता से हमारे वेद (जर्मनी से) मँगाएँ जाते हैं। तब इनके अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त होता है।"

६६. **उनका गम्भीर अध्ययन:–** मुम्बई में पं० रामलाल ने स्वामी जी से शास्त्रार्थ किया जिसमें सभापति ने अन्त में स्पष्ट रूप से यह घोषणा की कि पं० रामलाल मूर्तिपूजा को वेदोक्त सिद्ध नहीं कर सके। परन्तु प्रयाग में जब यही पण्डित जी वैदिक यन्त्रालय के प्रबंधक को मिले तो उससे इनका वार्तालाप इस प्रकार हुई।

आप संस्कृत के विद्वान् हैं और भी हैं। इसी प्रकार स्वामी दयानन्द हैं। वे भी चारों वेदों को मानते हैं। फिर क्या कारण है कि आपमें मतैक्य नहीं। या तो स्वामी जी का कहा मानों अथवा उनके मत का खण्डन करके दिखाओ।

**पण्डित रामलाल:–** स्वामी जी संन्यासी तथा निर्लेप उदासीन हैं। वेद शास्त्र का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया है। उनकी बुद्धि प्रबल है। वे समर्थ हैं। वे सत्य कह सकते हैं परन्तु हमें सौ प्रकार के बन्धन हैं। सत्य कहें तो भी चर्चा हो जावे। हमारे सत्य कहने से लाभ तो कुछ हो नहीं सकता। हाँ! हमारी आजीविका मारी जायेगी।

**प्रबंधक:–** क्या सत्य-कथन से स्वामी जी ने सन्मान नहीं पाया? फिर आप क्यों अधर्म की कमाई करते हैं?

**पं० रामलाल:–** संसार की रीति नीति यही है। स्वामी जी का ही मान सन्मान अधिक हो सकता है। हम गृहस्थों का नहीं।

६७. मुम्बई में एक बार बहुत सी स्त्रियाँ सन्तान प्राप्ति की कामना से आईं। कई सेठ साहूकार भी बैठे हुए थे। स्वामी जी ने कहा, "पुत्र केवल वैरागी ही दे सकते हैं और कोई नहीं दे सकता। मेरे पास नहीं।" सेठ भी लज्जित हुए और वे स्त्रियाँ भी चली गईं।

६८. **आप देखेंगे:–** खण्डन से रुष्ट होकर लोग गालियाँ देते तो स्वामी जी कहते कि ईश्वर भक्ति का प्रचार करते हुए धर्म विरोधियों की गालियों से मैं प्रसन्न होता हूँ न कि रुष्ट। फ़र्रुखाबाद में एक गोरा व दो देसी पादरी वार्तालाप के लिए आये। वे निरुत्तर हो गये तो प्रणाम करके कहने लगे कि हमें विश्वास है कि आप अति शीघ्र हमारे मत के अनुयायी हो जावेंगे।

स्वामी जी ने कहा, "यह तो सर्वथा असम्भव है। हाँ, आप देखेंगे कि स्वल्प काल में बहुत से ईसाई वैदिक धर्म की

प्रशंसा करते हुए वेदानुयायी होंगे।[१]

६९. **तो श्रीकृष्ण क्या करते?:**— मथुरा का एक चोबा स्वामी जी से दिल्ली में मिला और स्वामी जी को मिट्टी देने लगा। उन्होंने पूछा, "यह कैसी है?"
उसने कहा, "कृष्णजी ने बालकपन में यह खाई थी।"
स्वामीजी:— उन्होंने बालकपन में ऐसा किया होगा परन्तु, बड़े लोगों को, बुद्धिमानों को तो ऐसा करना योग्य नहीं है। थोड़ी देर के पश्चात् श्री स्वामी जी ने कहा, "हमने सुना है कि तुम्हारी स्त्री सुन्दर है और चतुर है। इस पर वह क्रुद्धित हुआ।"
स्वामी जी ने कहा, "अरे तुम साधारण स्थिति के व्यक्ति और तुमने इतनी सी बात पर बुरा मनाया। तुम विचार तो करो कृष्णजी को पराई स्त्री से आप बदनाम करते हो अथवा उनकी स्त्री का स्वरूप वर्णन करते तो वे आपसे कैसा व्यवहार करते?

७०. लुधियाना में पादरी वेहरी (Wherry) साहब ने कहा, "कृष्णजी के ऐसे काम सुनकर उन्हें महात्मा कहना बुद्धि को नहीं जाँचता। स्वामी जी ने कहा, "यह आरोप ग़लत है।" उन्होंने कहा, "श्रीकृष्ण ने ऐसा किया ही नहीं परन्तु जब बुद्धि यह सहन कर लेती है कि परमात्मा की आत्मा कबूतर की आकृति में एक व्यक्ति पर उतरी तो इसके स्वीकार करने में क्या कठिनाई है?"

७१. **मेरी केवल बात सुनिये:**— एक पण्डित ने अपने साथी से कहा, "दुष्ट है। इसका मुँह देखना धर्म नहीं। चलो।" स्वामी जी बोले, "मेरे मुँह में तो कोई विशेष बात नहीं, जिसे देखो। यदि घृणा है तो मेरे पीछे खड़े हो जाओ। केवल मेरी बात सुनो।"

७२. **तमाशा दिखाया:**— लुधियाना में आपने भूत-प्रेत आदि

१. यह घटना २३ मई १८७६ की है। 'जिज्ञासु'

का खण्डन किया। इसके लिए एक तमाशा दिखाया। जिस भवन में आपका निवास था उसके दोनों ओर जलता हुआ एक दीपक रखवाया। फिर एक को बुझाने के लिए कहा। वह बुझ गया। कहा, "दूसरा भी बुझा दो।" जब उसे बुझाया गया तो पहला जल उठा। और जब पहले वाला बुझाया तो दूसरा जल उठा। दोनों में दस-बारह गज़ की दूरी थी। कई बार दिखाकर कहा, यह ज्ञान की बात है, कोई भूत नहीं।

७३. **बिना विचारे आप टिप्पणी मत करें:–** लाहौर में भाई दित्तसिंह से स्वामी जी का वार्तालाप हुआ। शिवनारायण अग्निहोत्री[१] बीच में बोल पड़ा, "स्वामी जी से उत्तर नहीं बन पड़ा।"

इस पर स्वामी जी ने कहा, "भला बतायें कि मैंने क्या कहा?" अग्निहोत्री ने कुछ कहा तो स्वामी जी ने कहा, "क्यों भाई जी[२] हमने यही कहा?"

भाई जी ने कहा, "नहीं, यह नहीं कहा। पण्डित जी ने सुना ही नहीं।"

स्वामी जी ने फिर शिवनारायण अग्निहोत्री से पूछा, "भला आप अब यह बतायें कि भाई जी ने क्या कहा था?"

शिवनारायण ने कुछ कहा परन्तु भाई जी ने कहा कि मैंने यह नहीं कहा। तब स्वामी जी ने शिवनारायण अग्निहोत्री से कहा कि बिना सोचे-समझे कभी अपना मत न दिया करें।

७४. **सामवेद में कोई कहानी नहीं:–** एक बार शिवनारायण अग्निहोत्री ने स्वामी जी से कहा, "सामवेद में उल्लू की

---

१. इस व्यक्ति ने लाहौर में देवसमाज नाम की एक संस्था बनाकर देव धर्म नाम का एक नास्तिक मत चलाया था। पहले ऋषि की प्रशंसा करता रहा फिर घोर निन्दक बन गया। 'जिज्ञासु'

२. भाई दित्तसिंह ने स्वयं को वेदान्त का प्रचारक व विद्वान् लिखा है परन्तु कुछ अकाली सिख उसे अब सिख विद्वान् बताने लगे हैं। 'जिज्ञासु'

कहानी है।" स्वामी जी ने कहा, "कतई नहीं।"
अग्निहोत्री ने दृढ़पूर्वक कहा, "आप तो ऐसे ही कहते हैं कि कोई कहानी नहीं।" स्वामी जी ने उसके हाथ में सामवेद देते हुए कहा, "निकालो, इसमें कहाँ है?"
कुछ देर तक पृष्ठ उलट पुलट करके अग्निहोत्री ने कहा, "इसमें तो नहीं मिलती।"
उपस्थित श्रोताओं ने इस पर "शर्म! शर्म" कहा।

७५. **यह महान कार्यः**— लाहौर में एक व्याख्यान में श्री महाराज ने कहा, "हम नहीं जानते कि वैदिक धर्म प्रचार का महान कार्य इस जन्म में पूरा होगा कि नहीं। परन्तु यदि इस जन्म में नहीं तो दूसरे जन्म में हम इसे पूरा करेंगे।"

७६. **संन्यास-विरुद्ध कार्य?:**— किसी व्यक्ति ने कहा, आप तो संन्यासी होकर संन्यास-विरुद्ध कार्य करते हैं। आपने पूछा, "कौन सा?"
वह बोला, "शिव की निन्दा।"
तब स्वामी जी महाराज ने कहा, "मैं कोई शिव-निन्दा नहीं करता प्रत्युत सच्चे शिव के लिए जो श्रद्धा मेरे मन में है वह और किसी के मन में क्या होगी? हाँ, तुम्हारा पाषाण का बेजान शिव जो मन्दिर में है। वह सन्मान के योग्य नहीं और न मैं उसका मान आदर करता हूँ।"

७७. **एक मेज़ पर खायें:**— अमृतसर में पादरी क्लार्क महोदय ने कहा, "आओ! हम और आप एक ही मेज़ पर मिल बैठकर खायें।"
स्वामी ने कहा, "इससे क्या लाभ होगा?"
पादरी महाशय ने कहा, "इकट्ठे खाने से परस्पर प्रीति बढ़ेगी।"
इस पर स्वामी जी महाराज ने कहा, "शिया तथा सुन्नी मुसलमान परस्पर विरोधी हैं। वे एक ही बर्तन में खाना खाते हैं। इसी प्रकार तुम व रोमन कैथोलिक ईसाई एक ही

मेज पर खाना खाते हो परन्तु दिल से एक-दूसरे के शत्रु हो।"

यह सुनकर पादरी महाशय अवाक् रह गये।[१]

७८. **मृतक श्राद्ध शास्त्र विरुद्धः**– जालंधर में मृतक श्राद्ध विषय पर बहुतों से बातचीत हुई। कुछ लोगों ने पं० शिवराम को बात करने के लिए आगे किया। स्वामी जी ने उसे कहा कि निष्पक्ष होकर बतायें कि पितृ शब्द जीते के लिये आता है अथवा मृतक के लिये। उसने कहा, "महाराज! व्याकरण के अनुसार तो जीते के लिए ही आता है। पालना व रक्षा करना जीवित का ही काम है।" स्वामी जी ने कहा, "यही तो मैं कहता हूँ। यह नहीं कि जीते को पितर और मरे को खीर।"

७९. जालंधर में एक चमत्कार दिखाने वाले फ़कीर से वाद-विवाद हुआ। सरदार विक्रमसिंह के मन से उसकी चतुराई का प्रभाव दूर करना था। वह फ़कीर कहता था कि मेरे पास कुछ भी नहीं। मैं आकाश से जिन्नों से पदार्थ मँगवाता हूँ। स्वामी जी ने उसकी तलाशी लेकर उसके द्वारा छुपाई हुई पाँचसेरी निकाल दी।[२]

८०. **गुजरात की एक घटनाः**– गुजरात में स्कूल का एक मुख्याध्यापक मिस्टर बुचान[३] आपके एक व्याख्यान के पश्चात् खड़ा हो गया और कहा, "ओ बाबा! ओ बाबा! तू जो इन अंधों ब्राह्मणों की लाठी छीनता है। इसके बदले इन्हें क्या देता है?"

---

१. यह घटना सन् १८७७ की है। 'जिज्ञासु'

२. पहले जब सेर, छटाँक वाले बाटों का प्रचलन था तब पाँच सेर का भी एक बाट होता था उसे पाँचसेरी कहते थे। 'जिज्ञासु'

३. श्री पं० लक्ष्मण जी आर्योपदेशक की इस पुस्तक में मिस्टर बुचानन का नाम अशुद्ध दे रखा है। यह घटना गुजरात की है। मास्टर लक्ष्मण जी ने भूलवश झेलम लिख दिया है। श्री देवेन्द्रनाथ जी मुख्योपाध्याय के गोविन्द राम हासानन्द द्वारा प्रकाशित जीवन चरित में पृष्ठ ४०३ पर दिया गया वृत्तान्त प्रामाणिक है। 'जिज्ञासु'

स्वामी जी ने कहा, "मैं वेद देता हूँ। योगाभ्यास देता हूँ।"

८१. **ज्ञानी अथवा अज्ञानी:**— झेलम में कुछ हिन्दुओं ने परस्पर विचार करके स्वामी जी से प्रश्न किया, "आप ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी?"

श्री महाराज ने उत्तर में कहा, "कई बातों में ज्ञानी हूँ। कई बातों में अज्ञानी। उदाहरण के लिए दुकानदारी, व्यापार, अंग्रेज़ी, फ़ारसी आदि में अज्ञानी हूँ। संस्कृत व धर्म की बातों में ज्ञानी हूँ।"

८२. **धर्म कर्म करने वाले ब्राह्मण की मानो:**— मुलतान में ब्राह्मणों के विषय में व्याख्यान देते हुए स्वामी जी ने कहा, "हम यह नहीं कहते कि ब्राह्मण को न मानो प्रत्युत कह कहते हैं कि जो ब्राह्मण धर्म कर्म करता हो उसको मानना चाहिये। हम यह नहीं कहते कि ब्राह्मण को गो मत दो प्रत्युत यह कहते हैं गऊ वैतरणी से पार नहीं उतार सकती। यह बात मिथ्या है। हाँ, ईश्वर भक्त ब्राह्मण को गोदान देना पुण्य है।"

यह भी कहा कि यदि मैं यहाँ सात वर्ष तक रहूँ तो चारों वेदों की टीका कर दूँ। ब्राह्मण बालकों को एक पाठशाला में पढ़ाकर विद्वान् बनाऊँ। वे भिक्षा माँगना छोड़ दें। फिर देखें वे क्या बन जाते हैं।

८३. **मद्यपि कैसा होता है:**— मदिरा के बारे स्वामी जी कहते थे कि मदिरा पीने वाला ऐसा होता है जैसे पक्षी को पिंजरे में रखकर नीचे से आग लगा दी जाये। मांस के बारे में कहते थे, "मैं मांस नहीं खाता जिसका जी चाहे शक्ति परीक्षण कर ले। स्वाद तो मिर्च मसाले का है, मांस का नहीं। न ही मांस कुछ शक्ति देता है।"

कन्याओं का धन लेकर ब्याह करने वालों को भी बहुत बुरा मानते थे।

८४. **जब मुलतान में आर्यसमाज स्थापित हुआ:**— मुलतान आर्यसमाज स्थापित होने पर ब्रह्मानन्द जी ने हँसी में कहा,

"सात ही सदस्य बने हैं।"

स्वामी जी महाराज ने कहा, "मुसलमानों के पैग़म्बर की तो एक ही स्त्री सहायक थी। उसने इतनी उन्नति कर ली। हमारे धर्म के तो यहाँ सात सहायक हैं।"[१]

८५. **हमें न शीत सतावे और न ही धूप:–** एक श्रद्धालु ब्राह्मण रेशमी छाता लाया और महाराज के पास लाकर रख दिया। महाराज ने पूछा तो कहा, "आपके लिये लाया हूँ।" श्री स्वामी जी महाराज ने कहा, "सुनो भाई! हम तो साधु संन्यासी हैं। हमें न तो शीत सतावें और न ही ही धूप दु:ख देवे। यह छाता जाकर किसी नटवे को दे दो जो चूड़ा पहनकर लाहौर की गलियों में लाहौर में घूमा करे। हमें ऐसी वस्तु नहीं चाहिये।[२]

८६. **मैक्समूलर की योग्यता:–** किसी ने प्रश्न किया मैक्समूलर महोदय की योग्यता कैसी है? आपने कहा, "वह वेद विद्या में एक बालक है जब तक उसे गुरुमुख से विद्या प्राप्त न हो वह सायण तथा महीधर का अनुकरण कभी नहीं छोड़ेगा। उसको इस समय तक वेद के धात्वार्थ ज्ञात नहीं हुए। यौगिक अर्थ इस आयु में वह जान नहीं सकता। यह

---

१. इस प्रसंग में एक रोचक हदीस देना उपयुक्त होगा। हज़रत मुहम्मद से पूछा गया कि आपकी सबसे प्यारी बीवी कौन सी है? आपने कहा "ख़दीजा! कारण जब कोई मुझ पर ईमान नहीं लाया था। सबसे पहले उसी ने मुझे रसूल मानकर इस्लाम स्वीकार किया था।" प्रश्नकर्त्ता ने सम्भव है सोचा होगा कि मुहम्मद साहेब आयु में सबसे छोटी बीवी को अपनी सबसे प्यारी बीवी बतायेंगे परन्तु मुहम्मद साहेब ने बड़ा मार्मिक उत्तर दिया। 'जिज्ञासु'

२. स्वामी जी प्रत्येक व्यक्ति के लिए छाते का निषेध नहीं करते। तपस्वी, ब्रह्मचारी, संन्यासी को तो तप की भट्ठी में तपना होता है। स्वामी सत्यप्रकाश जी की संन्यास दीक्षा के समय उनके शिष्य अपनी-अपनी भेंट लेकर आये थे। स्वामी जी ने तब कहा था, "मैं तो सब कुछ छोड़कर संन्यासी बना हूँ। यह नया सामान संग्रह करके सम्भालूँ?" फिर छोड़ने का क्या अर्थ? बात भी ठीक है। संन्यास की कुछ मर्यादायें हैं। ऋषि ने उनका पालन किया। 'जिज्ञासु'

गुरु–शिष्य परम्परा से चले आते हैं।"

८७. अमृतसर में गुरदासपुर म्युनिसिपल बोर्ड (M.B.School) के अध्यापक श्री मुरलीधर ने श्री महाराज से विनती की कि मुझे गुरुमन्त्र दीजिये। यह सज्जन महाराज के प्रति बहुत श्रद्धा रखते थे और प्रायः आपके पास आते–जाते रहते थे। श्रीस्वामी जी ने कहा, "हमारा यही गुरुमन्त्र है कि जो सत्य है उसे मानो- ग्रहण करो और जो असत्य है उसे छोड़ दो। इस घटना के समय सन् १८७८ में ऋषिवर दूसरी बार अमृतसर पधारे थे। मास्टर जी तब अमृतसर में ही रहते थे। इस घटना की पूरक एक दूसरी घटना भी यहाँ देनी आवश्यक है। माननीय पं० लक्ष्मण जी आर्योपदेशक के बृहत् ऋषि जीवन व देवेन्द्रबाबू आदि जीवनी लेखकों ने इसे दिया है। यह घटना अमृतसर की प्रथम यात्रा सन् १८७७ की है।

मनसुखराय का पिता चाहता था कि उसका पुत्र किसी को गुरु धारण करे परन्तु वह किसी को गुरु नहीं बनाता है। जब स्वामी जी महाराज अमृतसर पधारे तो आपके उपदेश सुनकर उसके सकल संशय दूर हो गये। तब मिश्री का थाल भर कर लाया। स्वामी जी को भेंट किया। आर्यसमाज का सदस्य बन गया। ऋषिवर को गुरुमन्त्र देने की विनती की तो महाराज ने कहा, "गायत्री मन्त्र ही गुरुमन्त्र है। और और कोई गुरुमन्त्र नहीं है।" यह घटना १२ अगस्त १८७७ के पश्चात् किसी दिन की है।[१]

---

१. श्री मास्टर मुरलीधर जी के बारे किसी जीवनी लेखक ने कोई टिप्पणी नहीं दी। वह गुरदासपुर स्कूल के मुख्याध्यापक नहीं थे और न ही गणिताध्यापक थे। वह ड्राइंग मास्टर थे। वह बहुत बड़े विद्वान् शास्त्रार्थ महारथी हुए हैं। वह गुरदासपुर के एक समाज के प्रधान भी रहे। मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी उनके शिष्य रहे। मास्टर आत्माराम जी को पं० लेखराम के निकट लाने वाले मास्टर मुरलीधर जी ही थे। पं० लेखराम जी रचित जीवन चरित में भी उनका परिचय नहीं दिया गया। 'जिज्ञासु'

८८. **धर्मोपदेश सुनते हुये नींद क्यों?**– कहीं किसी ने पूछा, "महाराज, नाच गाने वाली सभा में रात भर जागें तो भी नींद नहीं आती परन्तु धर्मकथा-ईश्वर चर्चा सुनते हुये सत्संग में नींद क्यों आने लगती है?"
ऋषिवर ने कहा, "नाच तमाशे वाली सभायें शूल बिछी भूमि के सदृश हैं और ईश-चर्चा वाला सत्संग व धर्मोपदेश नर्म-नर्म बिछौने जैसा है।"

८९. **टेढ़ा बने बिना तुम्हें शान्ति नहीं तो:**– महाराज के पास बाँके बिहारीलाल नाम का एक क्लर्क था। उसका स्वभाव बड़ा कटु और झगड़ा करने वाला था। महाराज उसके साथ भी बड़े प्रेम का व्यवहार किया करते थे। वह नौकरी छोड़कर जाने लगा तो उसके वेतन की शेष राशि का भुगतान करते हुए उसे एक नोट दिया।
वह बड़ी धृष्टता से बोला कि इस पर हस्ताक्षर भी कर दें। स्वामी जी ने कागज पर "दयानन्द" लिख दिया। उसने कहा, "यह तो लिखा ही नहीं कि किसको दिया?"
तब स्वामी जी ने लिख दिया कि बिहारीलाल को दिया। अब उसने कहा, "बिहारीलाल तो उसका नाम नहीं है मैं तो बाँके बिहारी हूँ।"
इस पर स्वामी हँस पड़े और कहा, "ले भाई तू रुष्ट न हो यदि तुम्हें टेढ़ा (बाँका) बने बिना शान्ति नहीं आती तो ले साथ 'बाँके' का शब्द भी लिख देते हैं।"

९०. **खेद है कि हम कानों में रूई डाल बैठे हैं:**–रुड़की में श्री स्वामी जी ने कर्नल आल्काट का पत्र जो अमरीका से आया था, वह सुनाया। उस पत्र में उनका झुकाव वैदिक धर्म की ओर बढ़ा हुआ लगता था। उस समय पचास के लगभग सज्जन पुरुष वहाँ उपस्थित थे। स्वामी जी ने कहा, "खेद है कि दूसरे देश के तथा अन्य मतावलम्बी लोगों में हमारे धर्म के जानने व खोज का इतनी रुचि व उत्साह हो तथा हम यहाँ के निवासी और अपने आर्य संतान कहने

वाले इस प्रकार कानों में रूई डाल बैठे हैं।"

९१. **एक दलित का तिरस्कार न सहा गया:–** उपरोक्त पत्र को एक मज़हबी सिख[1] भी बड़ी उत्सुकता व श्रद्धा से वहाँ बैठा सुन रहा था। वह वहाँ सर्विस करता था। इतने ही में डाकिया पत्र बाँटने आया। उसने उस दलित को आगे होकर बैठे देखा तो उसे बड़े कठोर शब्दों में घृणास्पद ढंग से महर्षि के समीप होकर बैठने पर लताड़ा फटकारा।

वह विचारा लज्जित व अपमानित होकर एक ओर जाकर बैठ गया। उस पोस्टमैन ने पूरा यत्न किया कि उस दलित सिख को वहाँ से निष्कासित कर दिया जावे।

महर्षि ने उस पोस्टमैन को कहा, "परमात्मा की सृष्टि में सब समान हैं। उसके साथ इतना भेद-भावपूर्ण कठोर व्यवहार नहीं होना चाहिये। तुम मुसलमान हो परन्तु नित्य प्रति यहाँ उपदेश सुनने आते हो। क्या तुमसे यहाँ कोई घृणा करता है? तू इसके पीछे क्यों पड़ा है?"

९२. यह मेरठ की घटना है। ऋषिवर प्रातः समय नंगे शरीर एक बड़ा दण्डा लिये नदी[2] को जाया करते थे। एक दिन पहरे वाला सिपाही सड़क पर खड़ा था। एक भीमकाय लम्बे चौड़े व्यक्ति को देखकर वह डर गया। उसके होश उड़ गये।[3] वह समझा कि कोई जिन्न या भूत है। वह सिपाही सड़क के एक ओर होने लगा था कि इतने में वह 'देव' सड़क पर समीप ही आ गया।

---

१. किसी दलित सिख को सिखों में मज़हबी सिख बोला जाता है। 'जिज्ञासु'

२. मेरठ के समीप वर्षा ऋतु में बहने वाली काली नदी की ओर संकेत है। 'जिज्ञासु'

३. एक बार पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को प्रथम बार आता देखकर एक व्यक्ति ने कहा, "कोई पर्वत चलता हुआ आ रहा है या मनुष्य?"
इसी को महाकवि शंकर ने कहा, 'महिमा अखण्ड ब्रह्मचर्य की महान् है।' 'जिज्ञासु'

**उनको देखकर सिपाही डर गया:**– बस फिर क्या था। वह धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा। श्री महाराज दया करके उसे उठाने को आगे बढ़े तो वह और भयभीत हुआ। अन्ततः कुछ व्यक्ति उसे चारपाई पर डालकर थाना ले गये। कुछ समय के उपरान्त उसे कुछ होश आया तो पता चला कि वह जिन्न को देखकर डर गया था।

उसे बताया गया कि वे तो एक बहुत बड़े महात्मा हैं। तब वह दर्शनार्थ आया। और आगे से नित्य प्रति प्रातःकाल श्री महाराज को प्रणाम करने आता रहा।

९३. **शोक! वह तुमसे बोला नहीं:**– एक व्यक्ति ने हनुमान के दर्शन किये और दण्डवत होकर हाथ जोड़कर उसकी स्तुति की। कोई श्लोक भी पढ़ा। स्वामी जी ने यह दृश्य देखा तो उसे कहा, "अरे इतनी देर तूने यह सब कुछ किया। श्लोक भी पढ़ा पर शोक! महाशोक वह तुमसे कुछ बोला नहीं।

तू हमसे तो बोला नहीं परन्तु हम बिन बुलाये तुमसे बोलते हैं।"

९४. **पण्डितों ने उत्तर ही न दिया:**– स्वामी जी महाराज ने हरिद्वार कुम्भ पर आये हुए पण्डितों व साधुओं में से तीन को योग्य माना और तीनों को प्रेम भेर पत्र लिखे कि मैं जो कार्य कर रहा हूँ इसको आप सब लोग जानते हैं कि यह सर्वथा ठीक है परन्तु आप लोग प्रसिद्धि प्राप्त होने पर, विद्वान् होते हुए भी यह बात नहीं कहते? इनमें से सुखेदव गिरिजी तो पत्र वाहक पर रुष्ट हुए कि हमारे पास इसका पत्र न लाया करें। संसार इससे रुष्ट है। दूसरे दोनों व्यक्तियों विशुद्धानन्द जी व जीवन गिरि जी ने भी उत्तर न दिया।[1]

१. यह सन् १८७९ के कुम्भ की घटना है। पत्र के शब्द हैं, "मैं जो बात कर रहा हूँ उसको आप सब लोग जानते हैं कि वह सर्वथा ठीक है, परन्तु विद्वान् होते हुये भी आप उसे प्रसिद्ध क्यों नहीं करते।"

९५. **तुम ताज़िये व कबरें पूजते हो:**– एक मुसलमान ने एक हिन्दू को कहा कि तुम मूर्तिपूजक हो। स्वामी जी बोल पड़े, "यह छोटा मूर्तिपूजक है परन्तु तुम बड़े मूर्तिपूजक हो जो कोई तूर व श्याम पत्थर [संगे अस्वद] को पूजते हो। तुम ताजियों को पूजते व कबरें से मन्नतें माँगते हो।"[१]

९६. **हर की पौड़ी पर स्नान:**–डिप्टी साहब बोले कि हर की पौड़ी पर ही स्नान और दान की क्या विशेषता है? श्री महाराज ने उत्तर दिया कि यह बात पण्डितों ने चलाई है। लोग सर्वत्र स्नान करें तो पण्डे दक्षिणा कहाँ से लें? आपके अजमेर में भी मजावर कहते हैं, न उधर चढ़ाओ, न इधर प्रत्युत इन ईंटों पर चढ़ाओ क्योंकि ख़्वाजा साहब यहीं हैं।

९७. **फूट के युग में आये:**– हरिद्वार के कुम्भ मेला पर एक दिन प्रातः समय कन्ज़रवेक्टर वन विभाग मेरठ के कमिश्नर, कोलैक्टर सहारनपुर तथा और कई बड़े-बड़े व्यक्ति उस तम्बू के नीचे खड़े हुए जिसमें स्वामी जी व्याख्यान देते थे और पूछा, "स्वामी जी कहाँ है?"

एक व्यक्ति ने कहा कि वे अभी ईश्वर का ध्यान कर रहे हैं। कहा गया कब तक सूचित कर सकते हैं?

उत्तर मिला कि हम अभी नहीं कह सकते। आप कुर्सियों पर विराजिये। उन्होंने ऐसा ही किया। जब श्री महाराज आये तो ईश्वर विषय पर बहुत वार्तालाप हुआ। सब अंग्रेज़ लोग बहुत प्रसन्न हुये।[२] वे पुलिस की व्यवस्था भी कर गये कि किसी प्रकार का कष्ट न हो। यह भी कह गये कि किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो सूचित करें। उपलब्ध करवा ही जावेगी।

उन्होंने विदा करते हुए स्वामी जी ने कहा, "खेद है कि

---

१. यह घटना भी १८७९ के कुम्भ मेला की है।
२. भारतीय भी उनके साथ थे। 'जिज्ञासु'

आप फूट के काल में भारत में आये यदि उन्नति के समय आते तो देखते कि यहाँ कैसे-कैसे शूरवीर योद्धा विद्यमान थे। फिर उनके विद्या व बल की प्रशंसा की।"

९८. **गऊ विधवा की आहें**:- स्वामी जी प्रतिक्षण व्यस्त रहते थे। परन्तु जब कभी थोड़ा सा भी अवकाश मिलता तो मनुष्यों की अवस्था व पतन के विचार उनके मन में उमड़ गुमड़ कर आते। एक बार आप बैठे-बैठे लेट गये तथा थोड़ी देर के पश्चात् आह भर कर कहा, "विधवाओं व गऊओं की आहों से यह देश बर्बाद हुआ।"

९९. विरोधी सदा छल-कपट से आपके प्राण लेने के षड्यंत्र रचते रहते थे तथा स्वामी जी भी इस बात को जानते थे। यथा सम्भव सतर्क भी रहते थे। एक दिन हरिद्वार में सड़क पर जटाजूट दो नांगे साधु आये। स्वामी जी के पास रहकर पढ़ने की इच्छा प्रकट की। स्वामी जी ने कहा, "हमारे साथ रहना सम्भव नहीं है" और उदाहरण देकर समझाया कि शंकराचार्य के साथ दो जैनी शिष्य होकर रहने लगे। उन्होंने उपयुक्त अवसर देखकर भोजन में विष देकर मार डाला।

१००. **महामारी फैलेगी**:- हरिद्वार के कुम्भ मेला की समाप्ति से तीन-चार दिन पूर्व आपने अपने व्याख्यान में यह चेतावनी दी कि यहाँ महामारी फैलने की सम्भावना है और उसके कारण इस ढंग से बताये समझाये कि बुद्धिमान, विद्वान् व डॉक्टर लोग भी दंग रह गये। राज्य कर्मचारियों, अधिकारियों व प्रबंधकों को सम्बोधित करते हुए कहा कि क्या आप लोग वैद्यक शास्त्र से भी अनभिज्ञ हैं? आप लोगों ने डेढ़ मील की दूरी पर शौचालय बनवाये हैं। इससे तो उलटा जनता की हानि हो रही है। इससे यात्री रुग्ण होते हैं। जिसे मल मूत्र का विसर्जन करना हो, वह इतनी दूर जाने तक इन्हें रोकेगा तो इसकी गर्मी सिर को चढ़ेगी। जब शरीर की भीतरी ऐसी स्थिति हो तो दूषित वायु का अति शीघ्र

उस पर दुष्प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार आपके नियमों व व्यवस्था के कारण कई जाने जायेंगी। कृपया यात्रियों पर दया कीजिये। सड़क से कुछ दूरी पर झण्डियाँ लगा कर लोगों को सूचित करें कि यात्री यहाँ मल–मूत्र का विसर्जन करें और यह जो गंगा के मैदान में भट्टे लगाकर मल जलाते हैं इससे भी वायु अशुद्ध हुई है। इससे महामारी फैलेगी।[१]

१००.**लकड़ पंथी साधुः**– कुछ साधु झण्डे को चँवर करते थे। स्वामी जी ने उन्हें कहा, "तुम लकड़ पंथी हो। इस अविद्या के जाल में मत फँसो। यदि तुम्हारे में कोई वृद्ध हो तो उसकी सेवा करो।"

१०१.**गला काटने की धमकीः**– एक दिन एक वृद्ध ब्राह्मण ने हरिद्वार में स्वामी जी के व्याख्यान के बीच में कहा "तुम्हारा गला काट दूँगा और अपना भी। तूने हमारी बहुत हानि की है। तूने हमारी आजीविका ही मार दी है।"
पुलिस वहाँ पर थी। स्वामी जी ने पुलिस से कहा, "इसे कुछ न कहा जाये। केवल इतना ही करें कि यह व्याख्यान में विघ्न न डाले।"

१०२.हरिद्वार कुम्भ पर मणिराम व उनके गुरु बड़े अभिमान से पहुँचकर बोले कि स्वामी जी आप ऊँचे चौकड़ी लगाये बैठे हैं और हमारे लिए स्थान ही नहीं है। उस समय श्री महाराज के सिर पर एक मक्खी बैठी थी। आप बोले, "भाई! मैंने तो मक्खी को भी अपने सिर पर बिठा रखा है। यदि आपके

---

१. महर्षि दयानन्द चरित पृष्ठ ४६५–४६६ पर लिखा है कि कोई यूरोपियन डॉक्टर ऋषि के पास आये तो ऋषि के प्रश्न का उत्तर देते हुए उसने कहा, "कुछ विष्ठा तो गंगा में बहा देते हैं, कुछ भूमि में दाब देते हैं और कुछ जला देते हैं। ऋषिवर ने कहा, "आज से तीसरे वा चौथे दिन विषूचिका फैलेगी।"
"तीसरे दिन उक्त रोग से कई मनुष्य मर गये।" व्यक्ति कितने मरे इसका ठीक–ठीक पता नहीं है। 'जिज्ञासु'

लिए स्थान होता तो यहाँ बिठा लेता।"[१]

१०३.मुरादाबाद में स्वामी जी महाराज ने वेदों के महत्त्व पर व्याख्यान दिया। कई उत्तम उपदेशों के साथ-साथ राजा व प्रजा के कर्त्तव्यों पर भी प्रकाश डाला। कोलैक्टर महोदय भी व्याख्यान सुन रहे थे। स्वामी जी को यह पता था कि उन्हें आखेट आदि में विशेष रुचि है अतः आखेट आदि व्यसनों का भली प्रकार से निषेध किया।

१०४.**जो कहा सो सत्य है:**- व्याख्यान की समाप्ति पर कोलैक्टर महोदय ने स्वामी जी की बहुत प्रशंसा की। साथ ही यह कहा, "यदि राजा व प्रजा का ऐसा ही व्यवहार होता तो विप्लव [१८५७ ई० की क्रांति] वाला कष्ट राजा व प्रजा को न सहना पड़ता। जो कुछ स्वामी जी ने कहा है, सब सत्य है।"

१०५.**मुरादाबाद समाज की स्थापना के समय:**- जब मुरादाबाद समाज की स्थापना की गई तब बहुत हवन सामग्री मँगवाई गई। मोहन-भोग भी पर्याप्त बनवाया गया। वेदी खुले स्थान पर बनाई गई। भारी वर्षा होने से हवन विलम्ब से हुआ। स्वामी जी ने कहा, "अब हवन तो थोड़ी सी सामग्री से कर लें तथा मोहन भोग सब लोगों में थोड़ा-थोड़ा वितरित कर दें। सब लोगों को भूख भी लगी है अतः कुछ पूड़ी-कचौड़ी बाजार से मँगवा लें। ऐसा ही किया गया। कुछ लोगों ने सारे नगर में यह प्रचारित कर दिया कि श्री स्वामी जी ने हलवे में थूक दिया है। वही

---

१. विरोधी पण्डितों द्वारा स्थान-स्थान, नगर-नगर में ऊँचे नीच स्थान पर बैठने का प्रश्न उठाया गया। पंजाब में, बिहार में, उत्तर प्रदेश में ऐसी कई घटनायें घटीं। ऋषिवर सर्वत्र बड़ी उदारता से इस आक्षेप का उत्तर देते रहे। कई बार यह पता चलने पर कि जन साधारण में कोई विशेष व्यक्ति बैठा है, महाराज ने स्वयं उठकर उसे आदरपूर्वक कुर्सी पर बिठाया। 'जिज्ञासु'

हलवा सबने खाया है। स्वामी जी व आर्य लोग बहुत हँसे कि मूर्खों में ऐसी ही बातें होती रहती हैं। अन्य लोग पंचायतें करके आर्यों को समाज से निष्कासित करते फिरते।

१०६.**पेट भरने के लिये धागा बाँधते:**— मुरादाबाद में बूढ़े-बूढ़े लोगों को रक्षा बंधन के दिन ऋषिवर रक्षा बँधवायें हँसते कि तुम वृद्ध लोगों ने क्यों रक्षा बंधन बाँधा है? तुम्हें पता नहीं कि आज के दिन देखकर इस देशमें क्या होता था?

फिर उनके पूछने पर बताया कि आज के दिन राजा बहुत बड़ा यज्ञ रचाते थे तथा पाठशाला के सब विद्यार्थियों के हाथों में राज की ओर से रक्षा बंधन बाँधा जाता था कि राजपुरुष व प्रजा सब उनकी रक्षा करें। शोक! अब पेट भरने के लिए तुम धागे बँधवाते हो।

१०७.**तुम्हारा काम लिखना है:**— बरेली में पादरी स्काट जी से स्वामी जी का शास्त्रार्थ हुआ।[१] बीच-बीच में ज़िन्दा दिली की टिप्पणियाँ भी होती थीं। एक बार पादरी जी ने कहा कि मैं यह बात स्पष्ट तो कर देता हूँ परन्तु लिखी न जाये। स्वामी जी ने कहा, "जो कहोगे, लिखा जायेगा।"

पादरी जी का क्लर्क बोला, "स्वामी जी! आप पादरी जी की बात मान लें।"

उत्तर मिला, "तुम्हारा काम लिखना है। सुझाव देना नहीं।" पादरी जी बोले, "आपकी सी बात तो सब कहते हैं। हमारी सी एक ही कहता है तो आप रोकते हैं।"

स्वामी जी ने कहा, "न्यायी की सब कहते हैं, अन्यायी की सी कोई नहीं कहता।"—

१०८.**इनका सामर्थ्य भी इतना ही है:**— एक दिन घोड़ा गाड़ी पर सवार होकर श्री स्वामी जी फ़र्रुखाबाद में आर्यसमाज

---

१. इस पुस्तक में मुद्रण दोष से, कातिब की भूल से बरेली की बजाय मेरठ छप गया है। यह शास्त्रार्थ १८७९ ई० में हुआ था। 'जिज्ञासु'

की ओर आ रहे थे। एक कुत्ता घोड़े को भौंकता हुआ पीछे-पीछे दौड़ा। थोड़ी दूर जाकर वह रह गया। स्वामी जी ने कहा, "इसमें इतना ही सामर्थ्य है। यह घोड़े के साथ कैसे समानता कर सकता है? इसी प्रकार कपोल कल्पित ग्रन्थों के मानने वालों का सामर्थ्य है। वे भी अनादि वेद के मानने वालों के साथ शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हैं।"

१०९.**न्याय का सामर्थ्य न हो तो:**– एक दिन फ़र्रुखाबाद में वहाँ के श्रीमन्त व आनरेरी न्यायाधीश बाबू दुर्गाप्रसाद से स्वामी जी वार्तालाप कर रहे थे। नगरपालिका व उसके सदस्यों की चर्चा चली तो आपने सेठ जी से कहा, "क्या आप अभियोग में न्याय करते हैं?"

बाबू दुर्गाप्रसाद जी ने कहा, "हाँ महाराज!" न्यायाधीश का राजा का काम यही है कि पक्षपात किसी का न करे और अन्याय कभी न करे। मुझे जहाँ तक होता है जाँच-पड़ताल कर लेता हूँ परन्तु मन की बात कैसे जान सकता हूँ?"

इस पर स्वामी जी ने कहा, "जब तक पूरा ज्ञान व दूसरे की मन की बात जानने का सामर्थ्य न हो न्याय करना किसी को उचित नहीं। इस सामर्थ्य के बिना न्याय क्यों करते हो?"

यह सुनकर बाबूजी चुप रहे।[१]

११०.**हमारा कार्य तो इतना ही है:**– एक बार दानापुर बिहार में एक बाबू जी ने कहा, "स्वामी जी आपका कथन सत्य है परन्तु यदि लोग हठ से न मानेंगे तो आप क्या करेंगे?" श्री महाराज ने कहा, "हमारा कार्य तो बस इतना है कि

---

१. महर्षि की सोच बहुत ऊँची है। अन्याय न हो परन्तु दूसरे के मन की बात जानने का क्या ढंग है? इस पर आगे कुछ नहीं कहा गया। 'जिज्ञासु'

लोग हमारे कथन को अपने कान में स्थान दें और जब वे उनको भली प्रकार से सुन लेंगे तो वह सूई सदृश भीतर चुभ जावेगा तथा निकालने से फिर नहीं निकलेगा। यदि उनका कोई मित्र प्रेमी एकान्त में पूछेगा तो वे स्पष्ट कहेंगे कि यह बात तो सच्ची है।"

१११.**योग की विधि सिखायें:**— दानापुर में ठाकुर प्रसाद स्वर्णकार ने एक स्त्री के होते हुए दूसरा विवाह कर लिया। एक दिन वह स्वामी जी महाराज के पास आकर बोला, "मुझे योग-विद्या सिखायें।"

श्री स्वामी जी ने उसे कहा, "एक विवाह और कर ले। इससे तेरा योग ठीक हो जायेगा।"

यह उत्तर पाकर वह मौन हो गया।

११२.दानापुर में एक बार जोन्स साहब नाम के एक व्यापारी कई पादरियों व यूरोपियन देवियों के साथ स्वामी जी से मिले और विनती की कि कुछ कहें। श्री महाराज ने कहा कि हम तो प्रतिदिन कहते ही रहते हैं आज आप कुछ कहें। अन्तत: यही निर्णय हुआ कि स्वामी जी ही कुछ कहें। तब स्वामी जी ने प्राकृतिक पदार्थों का सबके लिए एक सरीखा होना और इसी प्रकार से सब मानवों के लिए एक ही धर्म का होना उनसे मनवा लिया। फिर धर्म के इच्छुक की बात सुनाई कि किस प्रकार से सब मतावलम्बी 'जिज्ञासु' को अपनी ओर खींचते हैं।

एक-एक मत के विरुद्ध ९९९ साक्षी मिलती हैं परन्तु जो वास्तविक धर्म है तथा सत्य भाषण, चोरी न करना इत्यादि इस पर सब सहमत होते हैं अत: वास्तविक धर्म सबका वही है जिसके विरुद्ध कोई साक्षी नहीं दे सकता। इसके पश्चात् जोन्स महोदय ने कहा, "आप इस ढंग से इन बातों को प्रस्तुत करते हैं कि इनके विरुद्ध कुछ कहना बड़ा

बोझिल (कठिन) सा लगता है परन्तु फिर आप अस्पृश्यता क्यों करते हैं? हमारे साथ क्यों नहीं खाते?"

स्वामी जी महाराज ने कहा, "हम खाने न खाने में धर्म नहीं मानते। यह तो एक रीति है। क्या आप अपनी बेटी का विवाह एक देसी ईसाई से कर देंगे? और करें तो क्या प्रसन्न होंगे?"

पादरी महोदय ने कहा, "नहीं।" तब प्रश्न हुआ "धर्म की दृष्टि से अथवा रीति की दृष्टि से?"

पादरी महोदय ने कहा, "अपनी जाति की रीति से।"

स्वामी जी:– अत: हम भी खाने का यह नियम रीति से करते हैं। धर्म मानकर नहीं। इस पर पादरी महोदय चुप हो गये।[१]

१**१३. इससे कुछ लाभ नहीं होगा:**–दानापुर में एक व्यक्ति दुर्गा अवस्थी बरादरी के भय के कारण व्याख्यान में नहीं जाता था यदि जाता तो चोरों के सदृश बाहर खड़ा रह कर सुनता और फिर चला जाता। उसकी यह प्रबल इच्छा थी कि श्री महाराज के मुख से कुछ सुने। उसे यह पता चला कि स्वामी जी प्रात:काल ही निकल जाते हैं। एक रात्रि वह उनके आगमन से पहले ही मार्ग में बैठ गया। जब स्वामी जी महाराज नदी तट पर से लौट रहे थे तो यह पीछे–पीछे हो लिया। मार्ग में महाराज ने पूछा, "तुम कौन हो? और क्या चाहते हो?"

उसने अपना सारा वृत्तान्त सुनाया कि मैं बरादरी के डर से

---

१. कुछ लोगों को यह भ्रम है कि एक साथ, एक थाली में एक–दूसरे का झूठा खाने से प्रेम बढ़ता है। मुसलमान ईसाई तो यह तर्क देते ही रहे हैं। अब हिन्दू सिख भी इस अंध विश्वास का शिकार होकर पति–पत्नि एक थाली में एक–दूसरे का झूठा खाते हैं। यह फैशन बन गया है। क्या इससे गृह कलह मिट गई है। यह व्यवहार विज्ञान विरुद्ध है। 'जिज्ञासु'

व्याख्यान में नहीं आता। आपसे वार्तालाप करना चाहता हूँ। बातें करते-करते बंगला पर पहुँच गये। ऋषि जी ने कहा, "तुम्हारा प्रयोजन क्या है?"

वह बोला, "महाराज! मेरी यही चाहना है, यही श्रद्धा है कि आप अपने चरण को मेरे मस्तक पर लगा दीजिये।"

स्वामी जी ने कहा, "इसका क्या फल होगा? और कोई बात हो तो कहो। अन्यथा हम जाते हैं। किसी समय आकर पूछ लेना।"

उसने कहा, "अवश्य किसी समय मैं आऊँगा परन्तु इस समय तो मेरी यही श्रद्धा है।" स्वामी जी ने उसका आग्रह देखकर कहा, "इससे होगा तो कुछ नहीं परन्तु यदि तू यही चाहता है तो ले" और यह कहकर अपने पाँव का अंगूठा उसके मस्तक पर लगा दिया।[१]

११४. **वे क्या कहते हैं, कहने दोः**— काशी में एक दिन महाराज के एक भक्त ने कर्नल आल्काट, मैडम ब्लैवेट्स्की तथा कई अन्य अंग्रेज़ स्त्री पुरुषों के सामने कहा, "महाराज! वैर भाव से लोग आपको बुरा भला कहते हैं।" स्वामी जी ने कहा, "इससे हम में सहनशीलता आती है। उनके कुछ भी कहने से क्या होता है। हमारा कार्य सत्योपदेश करना व संसार का उपकार करना है न कि उनके कहे का बुरा मानना।"

११५. **स्वामी दयानन्द का कथन सत्य हैः**— काशी में बाबू पृथ्वी सिंह जी व स्वामी विशुद्धानन्द जी का वार्तालाप

१. मुसलमानों, ईसाइयों व हिन्दुओं के विभिन्न सम्प्रदायों में इस प्रकार के कई निरर्थक अंध विश्वास हैं। वृक्ष पर बैठे रहने वाले एक बाबाजी सिर पर पैर रखकर आशीर्वाद दिया करते थे। हमारे देश के मन्त्री लोकसभा, अध्यक्ष, बड़े-बड़े नेता उससे ऐसा आशीर्वाद लेने जाते थे। ऋषि का कथन था इससे लोक-परलोक में कुछ भी लाभ नहीं होता। 'जिज्ञासु'

हुआ। तब स्वामी विशुद्धानन्द जी ने यह स्वीकार किया कि वास्तव में स्वामी दयानन्द जी का वेद भाष्य प्रामाणिकता की दृष्टि से मानने योग्य है परन्तु लोगों के सामने मैं ऐसा नहीं कह सकता। कहूँ तो अभी मेरी सारी प्रतिष्ठा धूलि में मिल जावे।

इसी प्रकार स्वामी विशुद्धानन्द व बालशास्त्री जब एकान्त में बात करते तो कहते कि जो कुछ दयानन्द कहता है वह सब सत्य है परन्तु क्या करें यदि हम भी वैसा ही कहें तो लोग हमको छोड़कर हमसे वैर-द्वेष रखें फिर हमारी आजीविका कैसे चले?

११६.**हमें पेट सत्य नहीं कहने देता:**– काशी के एक विद्वान् को एक दिन एक सहस्र रुपये[१] का ग्राम सङ्कल्प में मिला। उसी दिन उसकी मुंशी बख़्तावर सिंह सम्पादक 'आर्य दर्पण' से बातचीत हुई। मुंशी जी ने उनसे स्वामी जी के बारे में पूछा तो पण्डित जी ने कहा, "स्वामी जी कहते तो हैं सत्य परन्तु हम क्या करें?" उसको पेट खोलकर और उसकी ओर संकेत करके कहा, "देखो, अभी एक सम्पत्ति मिली है। सुख-सुविधा से उपभोग करते हैं। स्वामी जी के सदृश हम भी कहने लगें तो फूटी कौड़ी भी न मिले। फिर घर बैठे आजीविका कैसे चले? भाई! हम सबको पेट सत्य नहीं कहने देता।"

११७.**जो योगाभ्यास करना चाहो:**– फ़र्रुखाबाद के सहायक मैजिस्ट्रेट श्री डोनिस्टन (Doniston) ने कैम्प फ़तेहगढ़ में योग विषय में प्रश्न पूछा। स्वामी जी महाराज ने योग क्या है? यह सविस्तार व्याख्या करके समझाया और कहा, "आप लोग योग नहीं कर सकते। मांस-मदिरा का सेवन

---

१. तब एक सहस्र रुपये का मूल्ये अत्यधिक था। लगता है ग्राम की उपज से एक सहस्र रुपया तब आय होती होगी। 'जिज्ञासु'

करने वाले क्या योग-साधना करेंगे? यदि योग करना चाहो तो रोटी तथा मूँग की दाल का सेवन करना चाहिये।"

११८.**जब ऐसे-ऐसे विद्वान् थे:**— मैनपुरी उ० प्र० में स्वामी जी ने प्राचीन भारत का अपने व्याख्यानों में बहुत अच्छा चित्र चित्रण किया। कोलैक्टर व जज आदि बहुत अंग्रेज़ लोग सुनने आते थे। जब व्याख्यान माला समाप्त हुई तो एक मुसलमान सज्जन मिर्ज़ा आबिद अली बेग ने बहुत धन्यवाद देते हुए कहा कि जो यह कहते हैं कि दूर देशों के लोग यहाँ विद्या-प्राप्ति के लिए आते थे, यह तभी था जब श्री स्वामी जी महाराज सरीखे महात्मा लोग यहाँ थे। अब कौन आ सकता है?

११९. **तर्क शास्त्र के गम्भीर विद्वान्:**— मिर्ज़ा आबिद अली बेग[१] बड़े तार्किक थे। वह स्वामी जी से अनेक बार एकान्त में मिलते रहते थे। प्रथम भेंट में ही जब आध घण्टा के पश्चात् यह सुयोग्य सज्जन बाहर निकला तो यह कहा, "स्वामीजी ने तर्क शास्त्र में कमाल कर दिया (हद कर दी)।" एक महाशय ने कहा, "कुछ कहिये।" तो बोले "जो आनन्द व उल्लास आज के वार्तालाप से प्राप्त हुआ है वह इससे पहले कभी नहीं अनुभव हुआ। मैं तो इनसे क्या बात करूँ? जो पूछो उसका युक्तियुक्त उत्तर मिलता है।"

१२०.**स्वामी जी का अपमान:**—फ़ीरोज़ाबाद से स्वामी जी महाराज को दूसरी श्रेणी के डिब्बे में बैठा देखकर वहाँ का बंगाली स्टेशन मास्टर यह समझा कि यह साधु भूल से इस डिब्बे में बैठ गया है। आगे जाकर पकड़ा जायेगा। उसने किसी दूसरे बाबू से कहा कि इस संन्यासी को इस डिब्बे से उतारा जावे। स्वामी जी उस बाबू के कथन पर मुस्करा दिये। स्टेशन मास्टर भी प्लेटफार्म पर खड़ा-खड़ा यह दृश्य देख रहा था। उसे महाराज का हँसना बहुत चुभा। वह

१. इस सज्जन का नाम यही था। अहमद अली नहीं था। 'जिज्ञासु'

क्रुद्धित होकर बोला, "हँसता क्यों है? गाड़ी से बाहर हो जा।" यह कहकर स्टेशन मास्टर आगे चल दिया।

वहीं उसे किसी ने कहा, "इस गाड़ी से एक बहुत बड़े महात्मा पण्डित जा रहे हैं।" नाम भी बताया। उसने श्री महाराज का नाम सुन रखा था। स्टेशन मास्टर ने पूछा, "वे कहाँ हैं?"

उस व्यक्ति ने श्री महाराज की ओर संकेत किया तो अविलम्ब स्टेशन मास्टर महाराज जी के पास गया और अपने व्यवहार के लिए क्षमा माँगने लगा।

"स्वामी जी महाराज ने उसे बड़े प्रेम से कहा, "तुमने हमसे कुछ नहीं कहा। हम ऐसी बातों से रुष्ट नहीं होते।"[१]

१२१. **फलित ज्योतिष सच्च अथवा झूठ?**– देहरादून जाते हुये सहारनपुर स्टेशन पर स्वामी जी को एक ज्योतिषी ने कहा, "मैं प्रश्नों के उत्तर देता हूँ।" स्वामी जी महाराज ने कहा, "तू उत्तर क्या देता है? अकस्मात् तो कोई बात सच्ची हो सकती है। तुम्हारा ज्योतिष तो तब सत्य माना जावे जब तुम सौ प्रश्नों का एक-एक ही उत्तर दो और वे सब सत्य हों और यदि कुछ सत्य व कुछ झूठ निकलें तो ज्योतिष तो उड़ गया क्योंकि गणित के सब नियम नित्य सत्य होते हैं।"

१२२. **आप चाहें तो जूता उतार दें:**– आगरा में श्री स्वामी जी एक बड़ा चर्च देखने गये। एक व्यक्ति ने कहा, "पगड़ी

---

१. यह घटना प्रथम बार साप्ताहिक 'प्रकाश' उर्दू के महर्षि बलिदान अंक सन् १९१२ के पृष्ठ ४० पर प्रकाशित हुई थी। यह और किसी जीवन-चरित्र में नहीं दी गई। हमने 'प्रकाश' से लेकर डॉ० कुशलदेव जी के ग्रन्थ के प्राक्कथन में दी है। पं० लक्ष्मण जी को भी 'प्रकाश' से मिली होगी। महाराज तब मैनपुरी से मेरठ जा रहे थे। फीरोज़ाबाद का बंगाली स्टेशन मास्टर १९१२ में आगरा में ही था। उसी ने आर्यसमाजियों व अन्य लोगों को यह घटना सुनाई। आगरा आर्यसमाज के मन्त्री श्रीराम जी ने इसे 'प्रकाश' में प्रकाशित करवा दिया। 'जिज्ञासु'

उतार लीजिये।" श्री महाराज जी ने कहा, "हमारे शिष्टाचार के नियम के अनुसार पगड़ी का धारण करना बड़प्पन का, सम्मान का प्रतीक है, यदि आप चाहें तो जूता उतारकर भीतर जायें।"

उत्तर मिला, "जूता व पगड़ी दोनों उतार कर जावें।"

ऋषिवर ने कहा, "कोई बात नहीं। चलो! हम बाहर से ही एक दृष्टि डाल लेते हैं।"

श्री महाराज बरामदे में से ही मूर्तियाँ देखकर आ गये।[१]

१२३ **क्या इतना कार्य बिना योग के सम्भव हो गया?** एक अंग्रेज़ी पंडित भारतीय विद्वान् ने योग व योग की सिद्धियों के बारे चर्चा करते हुए कहा कि वह योग विषय के बारे कुछ नहीं जानता। स्वामी जी महाराज ने उसे कहा, "क्या तुम ऐसा समझते हो कि इतना भारी कार्य मैं बिना योग ही के कर रहा हूँ?" उसके सब संशय दूर हो गये और वह समाज का प्रेमी बन गया।

१२४.**न हर्ष और न शोकः**– स्वामी जी रायपुर स्टेट में थे कि उनके आतिथेय राजा जी की रानी का निधन हो गया। एक प्रतिष्ठित व्यक्ति ने कहा कि आप महाराजा जी से शोक प्रकट करने के लिए जावें।

ऋषिवर ने कहा, "भाई, मैंने तो सर्व संसार से सम्बन्ध तोड़ दिया है। किसी का मरना व जीना मेरे लिए एक समान है। मैं न शोक करता हूँ न हर्ष। मेरा सम्बन्ध तो केवल धर्म और धर्मोपदेश से है।"

१. स्वामी जी महाराज शासकों की चाटुकारिता करना तो जानते ही नहीं थे। उन्हें राष्ट्रीय स्वाभिमान व अपनी मर्यादाओं का सदा ध्यान रहता था। पाठक इस घटना को ब्यावर की घटना से मिलान करके पढ़ेंगे तो विशेष आनन्द होगा। वहाँ पादरी शूलब्रेड को आते देखकर सत्संग की दरी लपेट देने का आदेश दिया। वे अपनी सत्संगी दरी का तिरस्कार नहीं सह सकते थे। 'जिज्ञासु'

१२५.**अधर्म की कमाई खाने से भीख माँग कर खाना अच्छा:**– श्री स्वामी जी उदयपुर मेवाड़ राज्य में पधारे। वहाँ महाराणा सज्जन सिंह को मनुस्मृति पढ़ाते हुए कहा कि स्वामी धर्मपूर्वक आज्ञा देवें तो उसका पालन करना चाहिये अन्यथा नहीं। तब एक श्रीमन्त ने कहा, "यह हमारे शासक हैं यदि आदेश दें और हम अधर्म समझकर न मानें तो यह हमारी जागीर ज़ब्त कर लें।"

स्वामी जी महाराज ने उत्तर देते हुए कहा, "कोई चिन्ता नहीं। धर्म के लिए यदि सम्पदा अथवा जागीर भी चली जावे तो अधर्म की कमाई खाने तथा अधर्मपूर्वक आचरण करने से भीख माँग कर खाना अच्छा है।"

१२६.**ईसाई भाई का उत्तर क्या दिया:**– उदयपुर में महाराज धर्मोपदेश कर रहे थे कि बीच में टोकते हुए एक ईसाई बन्धु बार-बार कहता था मेरा प्रश्न सुनो। स्वामी जी महाराज ने कई बार कहा, "बात पूरी हो ले फिर बोलना।" तब स्वामी जी ने श्रोताओं से कहा, "आप लोग थोड़ा धैर्य रखें और उस प्रश्नकर्त्ता ईसाई भाई से कहा, "बोल तेरा प्रश्न क्या है?"

उसने कहा, "हम कहाँ से आये हैं? कहाँ जायेंगे?"

स्वामी जी महाराज ने कहा, "सुन, तुम पोल से आये हो, पोल में हो और पोल में जाओगे।"

वह कहने लगा, "हैं! हैं!"

स्वामी जी ने उसे समझाया, एक ओर बैठकर विचार कर तेरा उत्तर मिल गया।"[१]

---

१. यह कथन बाईबल की उत्पत्ति की पुस्तक की प्रथम आयत की ओर संकेत था। न जाने प्रश्नकर्त्ता इसे क्यों न समझ सका। "In the beginning God created the heaven and the earth. And the earth was waste and void." द्रटष्व्य Genesis १, २ यहाँ प्रयुक्त void शब्द का अर्थ पोल ही है। 'जिज्ञासु'

१२८. **यज्ञ परम्परा चलाई:**— उदयपुर में स्वामी जी ने कई दिन तक एक बहुत बड़ा यज्ञ कराया। आपने आज्ञा दी कि प्रतिदिन हवन होता रहे। दरबार के सदस्यों ने सहर्ष इस आज्ञा का पालन किया। हवन के पश्चात् हवनकुण्ड को सब महलों में घुमाया जाता था। जब तक महाराणा सज्जन सिंह जी जीवित रहे इस परम्परा को निभाया।

जब उनका निधन हो गया तो कुछ लोगों ने उनके उत्तराधिकारी महाराज फ़तह सिंह के मस्तिष्क में यह डाला कि वह हवन करते थे इस लिए मर गये। तब से हवन का करना बन्द हो गया।[१]

१२८. **यह बातें हमसे मत करिये:**— एक वकील महोदय उद्यान में स्वामी जी से बातें करते हुये बीच में कहने लगे कि कुलीन स्त्रियाँ जो बहुत सुन्दर होती हैं, वेश्या बन जाती हैं। इसका कारण क्या है?

स्वामी जी ने उसे कहा, "हमें ऐसी भद्दी बातें अच्छी नहीं लगतीं।" ऐसी बातें किसी और से पूछें।

१२९. **मूर्तिपूजक ईश्वर-निन्दक**— मूर्तिपूजकों को स्वामी जी कहते थे कि तुम लोग सर्वशक्तिमान् ईश्वर की ओर पीठ करके मूर्ति को पूजते हो। वास्तव में तुम ईश्वर को कुछ नहीं समझते। तुम तो उसकी निन्दा करते हो।

१३०. **मैं दो राजपूतों की पीठ थपथपा देता:**— जोधपुर में श्री स्वामी जी को यह धमकी दी गई कि यदि मुसलमान का राज होता तो आपको लोग जीवित नहीं छोड़ते और आप ऐसा व्याख्यान न दे सकते।

आपने उत्तर देते हुए तत्काल यह कहा, "मैं भी तब उस समय ऐसी ही कार्यवाही करता अर्थात् दो राजपूतों की पीठ

---

२. हिन्दुओं को अंधविश्वास भी कैसे-कैसे अपनी जकड़ पकड़ में लेता है। तब किसी ने यह न सोचा कि श्री रामचन्द्र जी, कृष्ण जी सब हवन किया करते थे फिर उनका निधन क्यों हुआ? 'जिज्ञासु'

थपथपा देता और वे तुम्हारी अच्छी खबर ले लेते।"

१३१.**देवियों के सदाचरण के कारणः**– राजस्थान में हिन्दू राजों के वेश्यागमन से महाराज का मन बहुत आहत हुआ। आपने एक आर्य महाशय से कहा कि हिन्दू राजों के दुराचरण से स्थिति इतनी दूषित है कि ये राज्य कब के नष्ट हो गये होते। ये जो अब तक कुछ बचे हुए हैं तो केवल रानियों के पतिव्रत धर्म की सत्ता से ही है अन्यथा यदि राजों के कर्म पर ही सब कुछ होता तो कब की लुटिया डूब चुकी थी।

१३२.**विनम्रता ऐसीः**– एक बार एक व्यक्ति ने कहा कि स्वामी जी आप तो ऋषि हैं। आपने कहा, "ऋषियों के अभाव में मुझे ऋषि कह रहे हो अन्यथा यदि मैं कणाद ऋषि के युग में होता तो उस समय के विद्वानों में भी कठिनता से मेरी गिनती होती।"[१]

१३३.**स्वामी जी को अच्छा न लगाः**– एक विद्यार्थी ने श्री स्वामी जी महाराज से कहा, "महाराज! एक पण्डित मुझसे उलझ पड़ा और फिर आपकी निन्दा में बहुत कुछ कहा। तब मैंने भी उसको वैसे ही उत्तर दिये।" स्वामी जी ने उसको आवेशपूर्ण शब्दों में कहा, "तेरा यह कार्य प्रशंसनीय नहीं है। जब यह जगत् ब्रह्मा व विष्णु आदि महापुरुषों की निन्दा

---

१. ऋषि जीवन की इस घटना और ऋषि के इस कथन का विरोधियों ने, ऋषि के निन्दक लोगों ने बड़ा दुरुपयोग किया है। संसार में विशेष रूप से आर्य संस्कृति में विनय बड़ों का भूषण होता है। विनय विहीन बड़प्पन का अर्थ ही क्या है? विरोधियों ने यह दुष्प्रचार किया कि वे ऋषि नहीं थे। उन्हें ऋषि-महर्षि प्रचारित कर दिया गया। क्या कोई महात्मा स्वयं को महात्मा कहेगा? ऋषियों में जो गुण होने चाहिये, वे सब गुण महर्षि दयानन्द जी में थे। इसी कारण लोग देश भर में उन्हें ऋषि-महर्षि कहते रहे।
'जिज्ञासु'

से नहीं चूका तो तो मैं कौन हूँ जिसकी निन्दा तू न सुन सका? तेरे जैसे पुरुष से जगत् की भलाई नहीं हो सकती।"

१३४.**यह पूरा पोप है:**— स्वामी जी को जब कभी यह पता चलता कि हमारा अमुक पण्डित गया में मूंछ मुण्डवाकर पिण्ड दान कर आया है तो वहीं समाजों को सूचित कर देते कि यह पूरा पोप है।[१] इसका उपदेश न सुनना। इसका क्या प्रभाव पड़ेगा?

१३५.**ऋषि की चाहना थी:**— श्री महाराज सारे भारत में वेद का नाद बजाकर यूरोप के देशों में प्रचारार्थ जाने की सोचते थे। उन्होंने अंग्रेज़ी सीखना भी आरम्भ किया था। उनके मन में कुछ योजना थी परन्तु मृत्यु ने इस चाहना को पूरा न होने दिया।[२]

१३६.**वज़ीराबाद में ईंट-वर्षा:**— श्री स्वामी जी महाराज पंजाब यात्रा के समय वज़ीराबाद भी आमन्त्रित किये गये। वहाँ विरोधियों ने आपका कड़ा विरोध किया। आप पर ईंटें भी फेंकी गईं। एक ईंट तो श्री महाराज के माथे पर भी आकर लगी। कुछ रक्त भी निकला। आपने इसकी कतई चिन्ता नहीं की। किसी को भी इसकी ओर ध्यान नहीं देने दिया। कपड़े से माथे को पूँछ लिया और अपने कार्य में यथापूर्व

---

१. घुसपैठिये तो परोपकारी संस्थाओं में सदा से घुसपैठ करते आये हैं। प्रत्येक के मनोभावों का जानना बड़ा कठिन कार्य है। परोपकारिणी सभा के एक अधिकारी मोहनलाल विष्णुलाल पण्डिया की ऋषि जीवन चरित में अच्छी चर्चा है। मथुरा के इस पण्डे की मथुरा के आर्यों ने पोल खोली। पं० लेखराम जी, महात्मा मुंशीराम व पं० कृपाराम आदि नेता इसे पूरा पोप बताते थे। ऋषि जी के सामने यह वैदिक धर्मी बन गया तभी परोपकारिणी सभा में लिया गया। ऐसे लोग ऋषि के व वेद के भक्त नहीं थे। ऋषि इन्हें पूरा पोप कहा करते थे। 'जिज्ञासु'

२. भाग्य को शास्त्रों में इसी कारण अदृष्ट भी कहा गया है। 'जिज्ञासु'

लगे रहे।[१]

१३७.**कहते कुछ हो करते कुछः**– मुम्बई में एक संन्यासी से मूर्तिपूजा विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। संन्यासी अपने पक्ष को प्रबल जानता था और इसके विरुद्ध कुछ भी नहीं मानता था परन्तु स्वामी जी ने यह कहकर चुप करवा दिया कि मैं जैसे कहता हूँ उसके अनुसार करता भी हूँ। तुम मूर्तिपूजा सिद्ध तो करते हो परन्तु करते नहीं हो।[२]

१३८.**स्त्री शिक्षा चल पड़ी तोः**– स्वामी जी स्त्री शिक्षा का प्रचार करते तो कहते थे कि लोग इस पर नाना प्रकार के आक्षेप करते हैं परन्तु इनकी विचित्र गति है। जो बात इनमें एक बार फैल जावे फिर इसका छूटना कठिन है। इसी प्रकार एक बार स्त्री शिक्षा का कार्य चल पड़ा तो फिर कोई रोक रुकावट न होगी अर्थात् कोई इसे रोक न पावेगा।

---

१. कोई स्वयंभू रिसर्च स्कालर यह प्रश्न कर सकता है कि देवेन्द्र बाबू जी आदि बड़े-बड़े प्रामाणिक ग्रन्थ लेखकों ने ऋषि जी पर ईंट वर्षा व चोट तथा रक्त बहने का उल्लेख नहीं किया। हमारा निवेदन है कि श्री पं० लक्ष्मण जी बज़ीाबादा के बहुत समीप के रहने वाले थे। उन्होंने इस घटना के प्रत्यक्षदर्शियों से जाँच पड़ताल करके ही तो लिखा था। पं० शहज़ादानन्द वजीराबाद समाज के संस्थापकों में से थे फिर लाहौर में ही रहते थे। उनके जीवनकाल में ही यह पुस्तक छपी थी। प्रत्यक्षदर्शी सब ऐसा ही बताया करते थे। प्रत्येक बात कई बार लिखने में नहीं आती।
मेरा जन्म स्थान वज़ीराबाद से कोई विशेष दूर नहीं था। मैं वाल्यकाल में यही सुनता रहा कि वजीराबाद में ऋषि जी पर ईंटें बर्साई गईं। आर्यासमाज के प्रधान व ऋषिजी को सुरक्षा के लिये कमरे में बन्द किया गया। अतः ईंट से चोट लगने पर शंका करना अनुचित है। 'जिज्ञासु'

२. मूर्तिपूजा के कई वकील ऐसा ही करते थे। श्रद्धाराम फलौरी तो विशुद्ध नास्तिक था परन्तु मूर्तिपूजा का वकील बना रहा। उसका चेला तुलसीदेव भी प्रतिमा पूजन नहीं करता था। परन्तु हरिज्ञान मन्दिर उसके पास था। 'जिज्ञासु'

१३९.**स्वामी विशुद्धानन्द को मध्यस्थ मानता हूँ:–** पं० श्रद्धाराम (हरिद्वार के कुम्भ मेला पर) पहुँच गये। पीछे ला० भोलानाथ भी आ गये और आर्यसमाज के विरुद्ध प्रचार करने लगे। पं० चतुर्भुज ने अपना न्यारा अड्डा जमाया परन्तु सफलता किसी को भी न मिली। अन्तत: परस्पर विचार–विमर्श करके एक ही स्थान पर विरोध के लिए डट गये। स्वामी जी को सन्देश भेजा। उन्होंने कहा, "मेरे डेरा पर आने के लिए किसी को कोई रोक नहीं है। जिसका जी चाहे, आवे।"

उत्तर में श्रद्धाराम चतुर्भुज ने लिखा कि हम किसी के स्थान पर शास्त्रार्थ नहीं करेंगे। स्वामी जी हमारे स्थान पर आ जावें। श्री स्वामी जी महाराज ने उत्तर दिया कि न तुम हमारे स्थान पर आओ और न हम तुम्हारे पर प्रत्युत कोई ऐसा स्थान हो जो न तुम्हारा हो और न हमारा तथा उसमें प्रशासन द्वारा प्रबंध व्यवस्था हो। मैं ईंटें फैंकवाने व हू हल्ला कराने के लिए जाना नहीं चाहता। हाँ, निर्णय जिस प्रकार से जैसे हो सके करूँगा।[१]

---

१. संख्या १४० का यह प्रसंग पं० लक्ष्मण जी के बृहत् ग्रन्थ 'मुकम्मिल जीवन चरित्र' उर्दू के पृष्ठ ६३४–६३५ से उद्धृत किया गया है। उपरोक्त ला० भोलानाथ सहारनपुर निवासी पं० श्रद्धाराम का निष्ठावान चेला था फिर इसी सज्जन ने पं० लेखराम जी के सामने अपने गुरु की सारी पोल खोली। पं० चतुर्भुज मूलत: अलीगढ़ निवासी था।

ऋषिवर ने अपने विरोधियों को जो उपरोक्त पत्र भेजा था। ला० भोलानाथ ने पं० लेखराम जी को उसका भी ठीक–ठीक आशय सुनाया था। महर्षि जी के पत्र और विज्ञापन ग्रन्थ से उस पत्र की पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत करना अत्यावश्यक व उपयोगी समझ कर दी जाती हैं। 'जिज्ञासु'

"शास्त्रार्थ की जगह न मेरी हो न आपकी। जूना अखाड़ा में आने में मुझे शारीरिक हानि पहुँचने का भय है। शरीरपात की तो मुझे चिन्ता नहीं, परन्तु जो उपकार कार्य मैं कर रहा हूँ वह अधूरा रह जायेगा।"

"ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" द्वितीय संस्करण पृष्ठ १३६

उन्होंने उत्तर दिया, नांगों का अखाड़ा न हमारा स्थान है न तुम्हारा। आप वहाँ आ जायें। पुलिस आदि बुलाने की कुछ आवश्यकता नहीं।

स्वामी जी ने उत्तर दिया, वे भी आप ही के पक्ष में हैं अत: वह स्थान आप ही का है। बिना प्रशासनिक व्यवस्था के हम सहमत नहीं हैं। वह अवश्य होनी चाहिये। लाला रामशरण मेरठ ने कहा क्योंकि भीड़ बहुत हो जायेगी, अत: उसमें दंगा होने की आशंका है। दोनों ओर से समुचित ज़मानत दी जानी चाहिये ताकि दंगा न होने पाये।

स्वामी जी ने कहा "यदि स्वामी विशुद्धानन्द जी यह कह दें कि ये व्यक्ति मेरी तुलना में वेदों को समझ सकते हैं। और शास्त्रार्थ कर सकते हैं तो मैं तैयार हूँ और स्वामी विशुद्धानन्द जी को अपना मध्यस्थ मानता हूँ।"

इस पर स्वामी जी का पत्र लेकर वे लोग विशुद्धानन्द के पास गये। मास्टर जमीयत राय भी उनके साथ गये। जिस समय स्वामी विशुद्धानन्द ने उस पत्र को लेकर पढ़ा उस समय मास्टर जी उनके निकट थे। यहाँ तक कि केवल एक-दो व्यक्ति बीच में थे। उन्होंने चतुर्भुज व श्रद्धाराम को इतनी गालियाँ दीं और इतने अश्लील शब्दों में दीं कि मास्टर जी उन्हें बता पाने से लजा गये।

अन्त में कहा कि तुम उसकी तुलना में एक अक्षर भी नहीं जानते। मैं तुम्हारे शास्त्रार्थ का मध्यस्थ नहीं हो सकता।[१]

---

१. महर्षि दयानन्द का ईश्वर विश्वास व आत्म विश्वास वन्दनीय है वे काशी शास्त्रार्थ में अपने घोर विरोधी स्वामी विशुद्धानन्द जी को मध्यस्थ मान रहे हैं। स्वामी विशुद्धनन्द जी का हरिद्वार में न्यायोचित व्यवहार भी प्रशंसनीय है। कैसे हृदय परिवर्तन हो गया! और पं० श्रद्धाराम का ऋषि जी के नाम पत्र भी परोपकारिणी सभा के रिकार्ड में पढ़िये। उनका हृदय-परिवर्तन तो अत्यन्त शिक्षाप्रद व चमत्कारपूर्ण है। 'जिज्ञासु'

स्वामी जी को एक पत्र उन्होंने अपनी ओर से लिखा कि बहुत से अज्ञानी व मूर्ख अविद्वान् लोग दंगा करने की चाहना से एकत्र हुये हैं। आप इनकी बातों पर कतई ध्यान न दें।

मैं ऐसे लोगों के कहने से उस सभा का मध्यस्थ नहीं हो सकता जिसमें आप सरीखे विद्वान् शास्त्रार्थ करें। तीन बजे के लगभग दस सहस्र के लगभग व्यक्ति होंगे जब पं० भीमसेन ने खड़े होकर यह पत्र भरी सभा में सुनाया। इसके पश्चात् पोपों की ओर से कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ।

# वह विष पी के अमृत पिला देने वाला

**विशेष टिप्पणी:**—यह कविता मैंने गुनगुनाने, व्याख्यानों में बोलने व नगर कीर्तनों में गाने के लिए रची है। इसकी प्रेरणा पं० चमूपतिकृत दयानन्द आनन्द सागर की पंक्ति **'दयानन्द स्वामी तिरा बोल बाला'** से मिली। प्रत्येक पद्य ऋषि जीवन की किसी घटना व किसी पहलू पर प्रकाश डालता है। भाव विभोर होकर इन्हें गावें। **'जिज्ञासु'**

वह दीनों को दिल से लगा लेने वाला।
प्रभु एक है यह बता देने वाला।।
वह अपनों को अपना बना लेने वाला।
अंधेरों को चीरा व लाया उजाला।।

चमत्कार टोने छुड़ा देने वाला।
वह ऋषियों की शोभा बढ़ा देने वाला।।
जो सोते थे उनको जगा देने वाला।
सकल हीन भावों को जिसने निकाला।।

बड़ी सूझ से झूठ सच्च को कंघाला।
है हर मन में प्रीतम बता देने वाला।।
मतों ने भी घर अपना अपना सम्भाला।
अविद्या का परदा हटा देने वाला।।

वह भय भूत सारे भगा देने वाला।
वह निर्भय सुधारक विचारक निराला।।
**स्वतंत्र है कर्त्ता सुझा देने वाला।**
**टिका जिसके आगे न गोरा न काला।।**

सताय न ठण्डी, न लू और पाला।
तपस्या के सांचे में तन को था ढाला।।
**झटक करके क्या कोबरा मार डाला।**
**वह ब्रह्मचर्य महिमा दिखा देने वाला।।**

झुका शीश देखी जो नन्ही सी बाला।
यति योगी तुझ सा न देखा न भाला।।
वह काशी भी डोली जो डेरा था डाला।
ध्वजा ओ३म् की वह झुला देने वाला।।

वह जड़ पूजा जड़ से हिला देने वाला।
लगा पोप मण्डल की वाणी को ताला।।
वह वेदों की गंगा बहा देने वाला।
निशानी है जिसकी अमर दीपमाला।।

दलित दीन विधवा के सङ्कट को टाला।
गया निकल पाखण्डियों का दीवाला।।
**अनाथों की रक्षा सिखा देने वाला।**
**ऋषिवर तुम्हारा सदा बोलबाला।।**

## द्वितीय खण्ड

# देव असुर संग्राम

# पहला सर्ग

## यज्ञ में विघ्न

**है कठिन संग्राम इसका पाओगे फल एक दिन**
**इस कड़े पुरुषार्थ का परन्तु सुखद परिणाम है**

जगत् युद्ध क्षेत्र है। यहाँ का प्रत्येक निवासी एक बड़ा योद्धा है। देव व असुर दो दल प्रत्येक देश व प्रत्येक काल में प्रत्येक मनुष्य को दृष्टिगोचर होते हैं। वेद में इसका स्थूल दृश्य सूर्य तथा मेघ के युद्ध में दिखाया गया है। यह युद्ध अन्तरिक्ष में होता ही रहता है। मेघ सूर्य के प्रकाश को छुपाने का प्रयास करता है। घटायें बाँध-बाँध कर किरणों को पृथ्वी तक पहुँचने से हटाता तथा अंधकार फैलाता है। सूर्य अपनी तीक्ष्ण किरणों के बाणों से इसे छेदता तथा छिन्न-भिन्न करके जल के रूप में वर्षा कर पृथ्वी पर प्रभुत्व जमाता है।

राजा की प्रबंध व्यवस्था में अन्यायी व दुष्ट लोग तथा हिंसक पशु बाधा डाल रहे हैं। उनसे प्रजा की रक्षा के लिये राजा अपने न्याय नियम तथा सेना आदि से दण्ड देकर उनका नाश करता है।

गले-सड़े अथवा दुर्गंधयुक्त पदार्थ व मल आदि शरीर की आरोग्यता व बल पर आक्रमण करते ही रहते हैं। प्रतिक्षण ये अन्न व जल आदि को प्रदूषित करने में लगे हुये हैं। अग्नि अपनी प्रज्वलित लपटों से उन्हें छिन्न-भिन्न करके अन्तरिक्ष में कहीं का कहीं भगाकर पहुँचा रही है तथा उनके स्थान पर सुगंधियुक्त, रोग नाशक व पुष्टिकारक पदार्थों के परमाणु सर्वत्र स्थापित कर रही है।

गुरु सत्योपदेश से असत्य के बंधन तोड़ने में लगा है।

अध्यापक आचार्य विद्या पढ़ाकर अविद्या का नाश कर रहा है। इस प्रकार भले-बुरे, सच्चे व झूठे का संग्राम जहाँ चाहो देख लो।

बाहर ही नहीं प्रत्युत प्रत्येक मनुष्य के भीतर दो दिल प्रतिक्षण कार्य कर रहें। जन्म जन्मान्तरों में जो शुभ संस्कार धर्म कर्म के एकत्र हुये, श्रेष्ठ गुरुजनों के सत्संग से जो प्राप्त किया, ब्रह्मचर्य आदि तप से जो श्रेष्ठ गुण कर्म का अभ्यास किया यह सब अच्छी वृत्तियों का दिल एक ओर है परन्तु बाहर के विषय रूप, रस, गंध आदि आँख, नाक आदि इन्द्रियों के द्वारा भीतर आकर आक्रमण करते हैं। इनके वश में हुआ मन अथवा बुराई की ओर प्रेरित करने वाली दुष्प्रवृत्तियों—काम क्रोध आदि संस्कारों की सेना दूसरी ओर है। यह आसुरी सेना मनुष्य को बहुत गिरा देने में भी सफल होती है परन्तु अन्त को ज्ञान के खड्ग से आत्मा इनका दलन करता है।

कोई भी विचार मन में उठता तो दूसरा उसका प्रतिवाद करता है फिर पहले के पक्ष में एक और तर्क सूझता है। यह सब संग्राम ही तो है।

कोई भी मनुष्य संग्राम से बच नहीं सकता। वे जन भयंकर भूल करते हैं जो भोग-विलास के सपने लेते रहते हैं। यह आलस्य, प्रमाद, यह निकम्मापन केवल आसुरी दिल को प्रोत्साहित करता है कि वे बिना किसी खटके के हमारी सुख-सम्पदा का नाश करते हैं।

अतः पुरुषार्थहीन होना छोड़ो तथा युद्ध में कटिबद्ध होकर डट जाओ। संग्राम से बचना न तो सम्भव है और न ही उचित। हाँ! यह कर्त्तव्य बनता है कि देव दल में सम्मिलित होकर आसुरी सम्प्रदाय के ताड़न को अपना कर्त्तव्य जानो। यही मुख्य शिक्षा ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में आपके सम्मुख रखी। उसके वेदोपदेश रूपी प्रकाश को रोकने के लिऐ मतवादियों ने कितने विघ्न डाले। ऋषि ने बहुत समझाया कि सत्य को सुनकरः—

**मन में साहस रखो सहने का।**
**क्यों बुरा मानते हो कहने का।।**[१]
**सत्य ही महात्मा लोग कहते हैं:–**

परन्तु कौन सुनता था? लोगों ने भ्रामक समाचार (Rumours) फैलाये। बड़ों को और छोटों को उस ऋषि से मिलने से रोका। उसकी सुनने से रोका। उसकी सहायता करने से रोका। उसको कहीं ठहराने से रोका। कार्य करने से रोका। उसके स्वाँग उतारे। उसे गालियाँ दीं। उस पर ईंट पत्थर फेंके। उसे पत्थर मारे परन्तु क्या किसी भी **ऐसे कुकृत्य से सत्य का प्रचार बन्द हुआ?**

कदापि नहीं। तनिक घटनाओं की गम्भीर जाँच पड़ताल कीजिये तत्पश्चात् ऋषि की सफलता, उपलब्धियों को सामने रखो और फिर सोचो–विचारो कि देव बल क्या शक्ति है।

**१. महाराजा रामसिंह को मिलने न दिया**

जयपुर अधीश शैव मत के मानने वाले थे। वह वैष्णव सम्प्रदाय के खण्डन के लिये एक शास्त्रार्थ करवा रहे थे। उनके एक अधिकारी बख्शी राम व्यास ने यह चाहा कि स्वामी दयानन्द की कोटि के विद्वान् अपने पक्ष में यदि हो जावें तो बड़ी सफलता होगी। व्यास जी इस प्रयोजन से स्वयं स्वामी जी के पास गये परन्तु वे नहीं माने तब कई बड़े–बड़े व्यक्तियों के द्वारा प्रयास किया गया। अन्ततः स्वामी जी को महाराज से भेंट करने के लिये लाया गया। उन्हें राज राजेश्वर के मन्दिर में ठहराया गया।

स्वामी जी ने मूर्ति को नमस्कार करना ही नहीं था, सो नहीं किया। जब महाराजा को सूचित करने व्यास जी गये तो किसी ने यह कह दिया कि उनका हस्तक्षेंप कराया तो तुम्हारा सब काम बिगड़ जायेगा। वे तो सर्व प्रकार के प्रतिमा–पूजन का उन्मूलन चाहते हैं। व्यास जी ने भी उनके मूर्ति को नमस्कार न

१. लेखक के पद्य को हमने हिन्दी रूपान्तर दे दिया है। 'जिज्ञासु'

करने से ऐसा ही निश्चय कर लिया। बस फिर क्या था बिना सूचित किये यूँ ही आकर कह दिया कि महाराजा बाहर गये हैं। फिर पधारें। स्वामी जी अब वास्तविकता को ताड़ गये तथा यह कहकर चले आये कि हमें महाराजा से क्या लेना है?

इसके पश्चात एजन्ट गवर्नर जनरल स्वामी जी से मिले तो उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा तथा महाराजा रामसिंह वाली घटना सुनकर उन्हें बड़ा खेद हुआ। यहाँ तक कि एजन्ट महोदय ने महाराजा को लिखा कि बड़े खेद की बात है कि ऐसे प्रकाण्ड वैदिक विद्वान् से आपने बात न की। महाराजा को इस पत्र को पाकर बहुत पश्चात्ताप हुआ।[१]

अब महाराजा ने ठाकुर रञ्जीत सिंह अचरोल वाले से सानुरोध कहा कि जैसे भी हो स्वामी जी से भेंट करवायें। मुझे पहले उनके बारे ज्ञान नहीं था। अब दूसरी बार अजमेर पधारने पर महाराजा को आपने सूचित किया। महाराजा के भेजे बख्शी राम व्यास ने आकर निवेदन किया कि स्वामी जी आप राजभवनों में पधारें। महाराज दर्शन करना चाहते हैं।

स्वामी जी महाराज ने कहा, "व्यास जी, आप जानते हैं कि मेरे मन में राजभवनों में जाने की कुछ भी इच्छा नहीं है। यदि सम्भाषण करना हो तो किसी समय महाराजा यहीं पधारें। यह उत्तर पाकर महाराज ने पुनः ठाकुर जी से अनुरोध किया और उन्होंने बहुत प्रतिष्ठित व्यक्तियों के संग स्वामी जी महाराज से प्रबल अनुरोध किया। तब स्वामी जी ने उनकी विनती स्वीकार

---

१. इस पुस्तक के दूसरे भाग में आगरा के एक अद्वैतवादी साधु की एक पुस्तक से इसी घटना के सम्बन्ध में कुछ पूरक प्रकाश डाला जायेगा। वह महात्मा इस घटना के समय जयपुर में ही थे। बात तो वास्तव में यही थी कि जिन ब्राह्मणों की आजीविका मूर्तिपूजा पर निर्भर करती थी उन्होंने ही महाराजा से ऋषि जी की भेंट नहीं होने दी। 'जिज्ञासु'

कर ली तथा राजभवनों में पधारे परन्तु एक चेले ने आकर कहा कि महाराजा रनिवास में पधार गये हैं। अभी आना नहीं होगा।

स्वामी जी सब सच्चाई ताड़ गये तथा सब जन अविलम्ब लौट आये। राजों पर स्वार्थी लोगों ने जो प्रभुत्व जमा रखा था तथा जिस प्रकार सत्य को दबाया जाता था वह इस घटना से सब पता चलता है।

## २. कोतवाल को गांठ कर विरोध किया

कानपुर में परेड मैदान में बाबू क्षेत्रनाथ वकील ने शाम्याना लगवा दिया। स्वामी जी के व्याख्यान की मुनादी करवा दी गई। वहाँ का कोतवाल पहले से ही विरोधियों से मिला हुआ था। उसने आकर कहा कि आपने मैजिस्ट्रट को सूचित किये बिना मुनादी कैसे करवा दी?" यदि दंगा हो गया तो प्रबंध कौन करेगा? क्षेत्रनाथ ने कहा, "आप।" कोतवाल ने कहा कि मैं प्रबंध तो पीछे करूँगा पहले साहब को सूचित कर दूँ।[१]

घोड़ा दौड़ाकर साहेब की ओर चल दिया। बाबू क्षेत्रनाथ भी पीछे–पीछे हो लिये। और यह उन दिनों सबजज थे अतः साहेब ने पहले इन्हीं से भेंट की।

जब अंग्रेज़ी में सब कुछ बता दिया तो साहब ने कहा, "हमने सब कुछ सुन रखा है। दयानन्द बहुत बड़े पण्डित हैं। कहा कुछ बात नहीं। आप अवश्य उनका व्याख्यान करवायें। केवल इतना कह देना कि कठोर न बोलें।" साथ ही कोतवाल को आदेश दिया कि शीघ्र जाओ तथा व्यवस्था करो।

उधर विरोधियों ने समीप ही शाम्याना गाड़कर मोहन गिरि से गालियाँ दिलवाईं। कहा, "स्वामी झूठा है। अंग्रेज़ों ने भेजा है। किराणी बनाने आया है इत्यादि।"

---

१. कानपुर की इस घटनाओं के बारे अगले भाग में कुछ विशेष पूरक जानकारी दी जावेगी। उसमें कई रोचक प्रेरणाप्रद घटनायें दी जायेंगी। 'जिज्ञासु'

इसके अतिरिक्त विरोधियों ने ईंटें फेंकीं। एक पत्थर तो स्वामी जी के निकट पड़ा। तब प्रतिष्ठित सज्जन स्वामी जी को अपने साथ ले गये तथा कोतवाल की शरारत जानकर लैक्चर बन्द कर दिया।[१]

## ३. स्वाँग बनाकर अपमान किया

पूना में स्वामी जी ने भिड़े के बाड़े में १५ बहुत प्रभावशाली व्याख्यान दिये। नागरिकों के विचारों में विचित्र संघर्ष होने लगा अन्ततः बहुतों की रुचि वैदिक धर्म में हुई। स्वामी जी को यहाँ बहुत सन्मान दिया गया। एक दिन आपको हाथी पर बिठलाकर नगर में शोभा यात्रा निकाली गई। यह दृश्य स्वार्थियों के हृदयों को तीर समान बेंध रहा था। विचारे आपे से बाहर हो गये। एक षड्यन्त्र रचकर दो-तीन निर्धन व्यक्तियों को आगे करके उनमें से एक को गधे पर बिठाकर स्वाँग बनाकर उसे बाज़ार में घुमाया। इस प्रकार उन लोगों ने स्वामी जी महाराज के मान सन्मान को मिट्टी में मिलाना चाहा परन्तु इससे मिला क्या?

अपमान, अनादर व तिरस्कार, अभियोग चला। और जो दो मूर्ख आगे किये गये थे उन्हें छह मास व नौ मास का कारागार का दण्ड सुनाया गया। शेष लोग गिड़गिड़ाते हुए क्षमा याचना करते फिरते रहे।

## ४. तब कश्मीरी पण्डितों ने क्या कहा?

दिल्ली दरबार के अवसर पर महाराजा कश्मीर के प्रतिनिधि विशेष बाबू नीलाम्बर जी व दीवान अनन्तराम जी स्वामी जी से मिले तथा उन्होंने विचार-विमर्श किया कि महाराज महोदय से स्वामी जी की भेंट हो जाये। स्वामी जी ने यह सुझाव स्वीकार कर लिया।

---

१. कानपुर के कोतवाल का नाम सुलतान अहमद और मैजिस्ट्रेट का डौनियल (Daniel) साहब था। ऋषि जी २० अक्तूबर से ९ नवम्बर १८७३ तक कानपुर रहे। 'जिज्ञासु'

वास्तव में इन्हें भेजा ही महाराजा ने था। परन्तु बाद में पण्डितों के बहकाने से आपने अपना विचार बदल लिया। फिर जब स्वामी जी पंजाब आये तो महाराजा ने आपको अपने राज्य में आमन्त्रित करना चाहा परन्तु पण्डितों ने महाराजा से कहा कि उन्हें बुलाना ही है तो पहले अपने राज्य के सब मन्दिरों को ढा दीजियेगा।

पं० गणेशदत्त शास्त्री धर्म शास्त्र जज जम्मू के विचार बाद में पलट गये तो आपने कहा कि खेद है कि हमने दोनों बार महाराजा को ऋषि दयानन्द से मिलने से रोक दिया।[१]

### ५. खेद है कि एक मत न हुये

जहाँ अनपढ़ व स्वार्थी लोग दयानन्द के सार्वभौमिक मिशन में रुकावट डालते थे वहाँ शिक्षित तथा सुप्रसिद्ध परोपकारी लोग भी कई कारणों से मानव जाति में वास्तविक सत्य के प्रचार प्रसार में बाधक बन रहे थे। दिल्ली दरबार के अवसर पर स्वामी जी ने सब प्रसिद्ध नेताओं की एक बैठक (सम्मेलन) रखी। मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, बाबू नवीनचन्द्र राय, बाबू केशवचन्द्र सेन, मुंशी इन्द्रमणि, आनरेबल सर सैयद अहमद खाँ, बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि व स्वामी जी इसमें सम्मिलित थे। स्वामी जी ने कहा कि हम लोग सब एकमत हो जायें तथा एक ही रीति से देश का सुधार करें तो आशा है कि देश सुधर सकता है। इसके साथ ही वेदों का सकल संसार के लिए सांझा व सब दृष्टियों से सत्य व युक्तियुक्त होना सब पर स्पष्ट किया।

पर्याप्त प्रयास किया परन्तु खेद है कि बहुत बातचीत होने तथा सब बातों को स्वीकार करने पर भी सबमें मतैक्य न हो

१. पं० श्रद्धाराम के चेले साधु तुलसीदेव ने पण्डित जी की जीवनी के पृष्ठ ५७-५८ पर लिखा है, "सुना है कि स्यालकोट में दयानन्द जी ने चाहा मैं कश्मीर देश में जाऊँ, परन्तु राजा की आज्ञा मिली कि आप जम्मू की सीमा में पाद न धरे।" यह शुद्ध गप्प है। ऋषि दयानन्द कभी स्यालकोट गये ही नहीं। 'जिज्ञासु'

सका।[१]

## ६. डेरे व प्रवचनों व्याख्यानों के लिए स्थान न लेने दिये

**कहीं टिकने न दिया:–** बीसियों स्थानों पर विरोधी लोग इस निम्न स्तर तथा घटिया हथियारों पर उतर आये कि स्वामी जी जहाँ रहते व व्याख्यान देते थे वहाँ के स्वामियों को उन्हें उन स्थानों से निष्कासित करने तथा व्याख्यान बन्द करने के लिए विवश करते। सहारनपुर में पहले तो चित्रगुप्त मन्दिर से निकलवाया गया फिर जब राय कन्हैयालाल शिवालय में कुछ व्याख्यान हुए तो यहाँ भी पौराणिक ब्राह्मणों तथा पुजारियों ने भवन के स्वामी से शिकायत कर दी कि इस संन्यासी का यहाँ ठहरना उचित नहीं है। उसने यह शिकायत अनसुनी कर दी।

**वह देवी रुष्ट हो गई:–** एक दिन कन्हैयालाल जी की पत्नी मंगला वहाँ आई तो स्वामी जी ने अपने स्वभावानुसार उस स्त्री की ओर कोई ध्यान न दिया। इससे वह रुष्ट हो गई। उधर ब्राह्मणों ने उसे बहुत ही तंग किया तो उसने लखपतराय नाम के एक ब्राह्मण को भेजा कि वह महाराज जी को चले जाने को कह दे। उसने तो अत्यन्त शिष्टता से स्वामी जी से विनती की कि मुझे लोग बहुत दु:खी कर रहे हैं यदि आपको कष्ट न हो तो किसी

---

१. यह प्रथम प्रयास था। मतैक्य होना सम्भव ही नहीं था। आगे चलकर सर सैयद अहमद खाँ अंग्रेज़ों के बहुत निकट हो गये। आप पर अंग्रेज़ का ऐसा जादू चल गया कि उन्होंने मुसलमानों को कांग्रेस से दूर रखने के लिए कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन की तिथियों पर ही मुस्लिम शिक्षा सम्मेलन आयोजित करने आरम्भ कर दिये। पाकिस्तान के सब संस्थापक नेता व देश भर के सब पृथकतावादी मुस्लिम नेता अलीगढ़ आन्दोलन की उपज हैं। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के छात्रों ने तो कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आज़ाद पर भी प्राण घातक आक्रमण किया। वह किसी प्रकार से बचा लिये गये। ऋषि ने भारत में यह प्रथम एकता सम्मेलन कर दिखाया, यह अपने आपमें एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। इससे अधिक कुछ आशा नहीं की जा सकती थी। 'जिज्ञासु'

अन्य स्थान पर चले जायें। यह मन्दिर है और आप मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं। इस कारण सब मुझे सताते हैं। स्वामी जी अविलम्ब अपना सामान उठवा कर राम बाग आ विराजे।[१]

**लाहौर में कैसे-कैसे भटकना पड़ाः—** लाहौर में स्वामी जी दीवान रत्नचन्द के उद्यान में डेरा डाले हुये थे। पहले तो ब्राह्मण लोग व उनके जाल में फँसे लोग सुनने वालों को वहाँ व्याख्यान सुनने के लिए आने से रोकते रहे। स्वयं किसी अन्य स्थान पर प्रचार आरम्भ करके उपस्थिति घटाने का यत्न करते थे। जब दाल न गली तो दीवान भगवानदास पुत्र दीवान रत्न चन्द दाढ़ी वाला को उकसाया गया कि स्वामी जी मूर्तिपूजा का खण्डन व ब्राह्मण देवताओं की निन्दा करते हैं अतः इन्हें यहाँ से निकाल दो। वह दबाव में आ गये।[२] स्वामी जी के सहयोगी उन्हें विचार विमर्श करके डॉ० रहीम खाँ की कोठी में ले गये।

## ७. वज़ीराबाद में विरोध का इतना जोश[३]!

वज़ीराबाद में भारी भीड़ में श्री स्वामी जी महाराज के

---

१. मन्दिरों व आश्रमों में कुकर्मी पुजारी व दुष्कर्मी बाबे गुरु क्या-क्या करते हैं यह सब समाचार पत्रों व टी.वी. में आता रहता है। आसाराम बापू व उसके पुत्र पर क्या-क्या दोष लगाये गये, यह सब जानते हैं। तिरुपति से भगवान् के आभूषण पुजारी ने ही चुरा लिये। भांग व सुरापान तो मन्दिरों में हो सकता है, मांस भक्षण व पशु हिंसा पर कोई आपत्ति नहीं परन्तु मूर्तिपूजा व मृतक श्राद्ध का खण्डन ही अपराध है। 'जिज्ञासु'

२. यह जानकारी पाठकों के लिए रुचिकर होगी कि इन्हीं दीवान भगवानदास का एक सुयोग्य वंशज दीवान आनन्द कुमार पंजाब विश्वविद्यालय का उपकुलपति बना। वह महर्षि की शिष्य परम्परा के महान् विद्वान् पं. भगवद्दत्त जी का बड़ा भक्त प्रेमी था। मैंने इन्हीं दीवान आनन्द कुमार जी के पण्डित जी के साथ एक बार दर्शन किये थे। यह दीवान साहब पण्डित जी के बड़े प्रशंसक व सहायक थे। उनको देखते ही मुझे उपरोक्त घटना की याद आ गई और अब जब-जब यह घटना सुनाता हूँ तो दीवान आनन्द कुमार जी व पूज्य पण्डित जी की सहसा याद आ जाती है। 'जिज्ञासु'

३. वज़ीराबाद की कुछ चर्चा पहले भी आ चुकी है। 'जिज्ञासु'

व्याख्यान होते थे। बड़ा सुहावना समय बँधा हुआ था कि एक व्यक्ति सभा मध्य झुंझलाकर उठा और चीत्कार करता हुआ बोला कि जो कोई व्याख्यान सुनेगा व हिन्दू के वीर्य से नहीं होगा। ब्राह्मण व उनके चेले तो चले गये तथापि भीड़ बढ़ रही थी।

वज़ीराबाद के नामी ब्राह्मण तो महाराज के आगमन की चर्चा सुनकर ही नगर छोड़ गये थे तथापि लोगों ने एक वासुदेव नाम के पण्डित को मोटी दक्षिणा (एक सौ रुपये) का प्रलोभन देकर मनाया। वह सिर पर लम्बे-लम्बे बाल रखे हुए विकृत मस्तिष्क सरीखा लगता था। वह माँग-माँग कर निर्वाह करता था। शास्त्रार्थ के समय भीड़ बहुत थी। विचार तो आया परन्तु पुलिस का प्रबंध न हो सका। परिणाम यह निकला कि जब वासुदेव रह गया अर्थात् वास्तकि व वाञ्छित मन्त्र बार-बार कहे जाने पर भी प्रस्तुत न कर सका तो विरोधी दल दंगा करने का बहाना खोजने लगे। इतने में एक दस-बारह वर्षीय बालक शी शी करता सुनाई दिया। स्वामी जी ने देखा कि अनुचित कुचेष्टा करता है। कहा, 'इसे चुप करवा दो।' ला० लब्धाराम साहनी अभियन्ता[१] ने उसे एक छड़ी मारी अथवा छड़ी दिखकर उसे चुप करवाना चाहा। बस फिर क्या था। विरोधियों को एक अवसर हाथ लग गया।

वे स्वामी जी व अभियन्ता महोदय पर टूट पड़े। वज़ीराबाद व झेलम से आये आर्यसमाजियों ने उनके आक्रमणों को रोका। दोनों को बचाया। डेरा निकट ही था अतः पुस्तकें सम्भालकर सब लोग सुकुशल वहाँ पहुँच गये। लोगों ने ईंटें फेंकीं, पत्थर मारे परन्तु ये द्वार बन्द किये बैठे रहे। स्वामी जी का लेखक बिहारीलाल उन्हें समझाने लगा तो लोगों ने उसे बहुत मारा।

यह पता चलने पर स्वामी जी लाठी लेकर बाहर निकले और सिंहगर्जना जो की तो सब भाग खड़े हुये।[२]

---

१. ला० लब्धाराम ही वज़ीराबाद समाज के प्रधान थे। 'जिज्ञासु'
२. पहले भी बताया जा चुका है कि वज़ीराबाद ने आर्यसमाज को कई

## ८. एक दिन ईंटों की बजाय पुष्प वर्षा होगी

अमृतसर में सेठ गागरमल के भाई[१] से बातचीत होती थी। एक दिन किसी विषय पर बात चली तो स्वामी जी ने कह दिया, "तुम्हें क्या पता।" इस पर वह रुष्ट हो गया। उसने पौराणिकों की एक सभा में जाकर कहा, "मैं स्वामी के पास गया था। इसका क्या प्रायश्चित्त है? इसके अतिरिक्त शास्त्रार्थ के लिए विचार होने लगा। परन्तु बना कुछ भी नहीं। स्वामी यथापूर्व शास्त्रार्थ की चुनौती देते रहे। कोई सामने न आया। अमृतसर से चलने की तैयारी हो गई तो विरोधी कहने लगे हम शास्त्रार्थ करेंगे।

इस पर समाज ने पुनः चुनौती दे दी। जो आता है आये और नियम निश्चित किये जावें। विरोधियों ने अपने आप ही एक विज्ञापन दे दिया। कई शर्तें रख दीं। स्थान ऐसा बताया जहाँ कोई न जावे। स्वयं प्रस्ताव रखा और प्रबंध व्यवस्था का दायित्व समाज के ऊपर डाल दिया। यद्यपि नोटिस तो सार्वजनिक दे दिया परन्तु कहते फिरे कि हम शास्त्रार्थ करेंगे ही नहीं और दिखे ऐसे कि ये तैयार हैं। यह सब एक घटिया उपहास था।

आर्यसमाज ने स्वयं एक उचित स्थान का सुझाव दिया। यह स्थान ऐसा था जिस पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी। सब प्रकार से पूरी समुचित तैयारी थी। चारों वेद जनता को दिखाय गये। स्वामी जी ने व्याख्यान दिया। अन्ततः पण्डित गण आये परन्तु जयकारों व शोर से बड़ा कोलाहल का दृश्य था। चार पण्डित कुर्सियों पर बैठे। शास्त्रार्थ के नियम उनके हाथों में दिये गये।

---

रत्न दिये। पत्रकार शिरोमणि महाशय कृष्ण जी वज़ीराबाद के ही थे। क्रान्तिवीर रामप्रसाद बिस्मिल के गुरुदेव स्वामी सोमदेव जी भी वज़ीराबाद के ही थे। उनका पूर्वनाम श्री बृजलाल था। वे महाशय कृष्ण जी के लंगोटिये थे और संन्यासी के रूप में जब कभी लाहौर आते थे तो महाशय कृष्ण जी के पास ही रुका करते थे।

श्री पं० विश्वनाथ जी वेद भाष्यकार भी वज़ीराबाद के ही थे।

१. इसका नाम ईशरादास था। 'जिज्ञासु'

पण्डित पढ़कर बोले, "हम भी आपको नियम लिखकर भेजेंगे तथा आपके मँगवा लेंगे। यह बात होते ही पण्डितों के सहयोगी ईंट रोड़े मारने लगे। प्रत्येक रोड़ा स्वामी जी की ओर फेंका जाता था। चारों ओर लोगों का घेरा होने से वे बच जाते थे। कई प्रतिष्ठित लोगों के रोड़ लगे। कुछ एक को चोट लगी। रक्त भी बहा। दंगे की स्थिति बन गई। लोग तंग आ गये। बड़ी कठिनाई से स्थिति को ठीक किया गया। सब लोग इस विचित्र दृश्य को देखकर चकित थे परन्तु स्वामी जी महाराज अत्यन्त शान्ति से यह कहते थे, **"समय आयेगा जब रोड़ों के स्थान पर पुष्प वर्षेंगे।**[१]

## ९. आपने तो ऐसे ही कष्ट उठाया

लाहौर में मच्छी हट्टा के पण्डितों ने मतैक्य करके कुछ दुष्टों को इस कार्य के लिए तैयार किया कि वे स्वामी जी के डेरे पर जाकर उन्हें अपमानित करें। ऋषि जी के एक हितैषी को इस षड्यन्त्र का पता चल गया। वह रात के नौ-दस बजे स्वामी जी को यह सूचना देने पहुँचा।

स्वामी जी पलंग पर लेटे थे। उसकी बात सुनकर बोले, "तुमने तो ऐसे ही कष्ट किया। मुझे इस प्रकार के व्यक्तियों से कतई भी कोई भय नहीं है। मेरे पास बड़ा मोटा लट्ठ होता है।" उसी समय बिस्तरे के नीचे से निकाल कर दिखाया।

कहा, "दस बीस व्यक्तियों के लिये मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ। इस विषय में कोई चिन्ता न करें।"

---

१. ऋषिवर तीन बार अमृतसर पधारे। यह घटना १५ मई से १५ जुलाई १८७८ के प्रवास की है। शास्त्रार्थ का आयोजन तब १८ जून को किया गया जब ईंट रोड़े बरसाये गये। इस वृत्तान्त की पूरक सामग्री अगले भाग में भी दी जावेगी। यह भी महत्वपूर्ण घटना है कि विरोधी पक्ष के विज्ञापन में शास्त्रार्थ के लिए पण्डित चन्द्रभानु का नाम था। उसने शास्त्रार्थ करने से यह कहकर इनकार कर दिया कि उसने तो पण्डितों के दबाव में आकर हस्ताक्षर किये थे। 'जिज्ञासु'

## १०. मेरठ

विरोधी लोग स्थान-स्थान पर अनुचित ढंग से स्वामी जी महाराज को कष्ट देते रहे। श्री महाराज आप ही अकेले सब विघ्न बाधाओं का निवारण करते रहे। मेरठ में एक मौलवी अब्दुलगनी तथा मौलवी अब्दुल्ला महोदय ने शास्त्रार्थ करने के लिए पृथक्-पृथक् पत्र व्यवहार किया। दूसरी ओर ईसाइयों ने प्रचार किया और तीसरे कृपालु, धर्म रक्षणी सभा वाले भी शोर मचाने में पीछे नहीं थे। नगर के पण्डितों व सेठों का भी एक दल ऋषि के विरोध करने के लिए कटिबद्ध था।[१]

परन्तु श्री स्वामी जी महाराज ने किसी भी विरोधी पक्ष के विरोधी की चिन्ता न करते हुये महीना भर निरन्तर नगर में सोत्साह प्रचार किया।[१] व्याख्यान माला चलती रही। प्रश्नोत्तर शंका समाधान के कार्यक्रम होते रहे। शास्त्रार्थों के लिए भी पत्र व्यवहार करते रहे। अत्यन्त दृढ़ता से सत्य की ओर जनता को आकर्षित किया। पण्डितों ने तो पत्र व्यवहार में ही समय गँवा दिया। शास्त्रार्थ किया ही नहीं। इन लोगों के पत्र व्यवहार के ढंग से जो स्वामी जी तथा उन लोगों ने लिखे सब सत्य समाने आ गया।

केवल बातें बानाने में ही विरोधी लगे रहे। सामने आना तो कोई चाहता ही नहीं था।

कुछ व्यक्तियों ने तो सरकार तक झूठी रिपोर्टें भेजीं और गुहार लगाई कि स्वामी जी को मेरठ से निष्कासित किया जाये। यहाँ इनके व्याख्यान नहीं होने चाहिये। सरकार धार्मिक कार्य में हस्तक्षेप करना नहीं चाहती थी। विरोधियों को निराश होना पड़ा। इनकी दाल न गली। स्वामी जी महाराज के प्रयास व सद्धर्म के

---

१. इसी विरोध के तूफान को लक्ष्य करके कविरत्न प्रकाश जी ने लिखा है:–

था कुल जगत् विरोधी तिस पर ऋषि दयानन्द<br>वैदिक धर्म ध्वजा को फहरा गया अकेला 'जिज्ञासु'

प्रचार से बहुत शान से यहाँ आर्यसमाज स्थापित किया गया। सदस्य संख्या एक सौ तक तभी हो गई।

## ११. कैसे-कैसे हथकण्डे दुष्टों ने बर्ते!

अजमेर के कुछ भद्रपुरुषों की प्रेरणा पर स्वामी जी ने वहाँ जाना स्वीकार किया और उनके शुभ आगमन की चर्चा सारे नगर में फैल गई। स्वार्थी अंधकार प्रेमी तत्त्वों को भय लगा कि अब उनकी पोल खुलेगी। उन्हें और तो कोई उपाय न सूझा। उन्होंने एक मनघड़न्त (Faked) पत्र स्वामी जी महाराज को लिख दिया कि महाराज! समर्थदान ने आपको आमन्त्रित किया था परन्तु यहाँ चन्दा जो लिखा गया उसके प्राप्त होने की कोई आशा नहीं है।

लोग समर्थ दान से रुष्ट हो गये हैं। अब आपकी व्यवस्था करके पुनः आपको लिखेंगे। आप अभी न आयें। समर्थनदान जी आपको रोकने के लिए स्वयं पत्र नहीं लिखना चाहते।

यह नकली पत्र पाकर स्वामी जी महाराज ने दिल्ली से समर्थदान को पत्र लिखा। आप चिन्ता न करें। हमें आपका प्रेम भली प्रकार से विदित है। कुछ दिन पश्चात् आ जायेंगे। कोई हरज नहीं है। यह पत्र पहुँचते ही विरोधियों की सारी पोल खुल गई। श्री स्वामी जी को लिखा गया कि इसका लिखने वाला जुगल किशोर[१] मात्र एक खोटा (कल्पित) नाम है। यहाँ तो सारे कार्य की भली प्रकार से तैयारी हो चुकी है। आप अवश्य शीघ्र पधारें। इसके अनुसार स्वामी जी महाराज अजमेर पधारे। वैदिक धर्म का प्रचार धूमधाम से किया गया।

---

१. पत्र पर जुगल बिहारी शर्मा नाम लिखा गया। कातिब की भूल से उर्दू में जुगलकिशोर शर्मा छप गया। ऋषि जी ने वह नकली पत्र पाकर २१ अक्टूबर १८७८ को मुंशी समर्थदान को पत्र लिखा और ७ नवम्बर १८७८ को अजमेर पधारे। 'जिज्ञासु'

## १२. स्वामी जी के बारे भ्रामक समाचार

रुड़की के पं० अमराव सिंह जी से एक बार एक पण्डित ने पूछा कि स्वामी जी कहाँ हैं? उन्होंने बताया कि अजमेर हैं। उन्होंने कहा, "जयपुर क्यों नहीं गये?" पण्डित जी ने कहा "जहाँ तक मुझे जानकारी है नहीं गये। परन्तु पण्डित ने बार-बार कहा सम्भवत: गये हों।" तब अमराव सिंह जी ने कहा, "क्या आपको कोई समाचार मिला है?"

तब उन्होंने कहा, "मेरठ से कोई ब्राह्मण आया है उसने बताया है कि स्वामी जी जयपुर में बन्दी बनाये गये हैं।" तब पण्डित जी ने तत्काल उसी ब्राह्मण को बुलवाया और सारी बात पूछी। तब उसने बताया कि जयपुर से एक ब्राह्मण मेरठ आया था। वह आँखों देखी बात बताता था कि स्वामी जी ने जयपुर आकर श्राद्ध आदि के विरुद्ध भाषण दिये। राजा का भाई उन्हीं दिन चल बसा था। अत: उसे बुरा लगा और उसने स्वामी जी को सब साथियों के साथ बन्दी बना लिया।

लोगों ने बहुत यत्न किया परन्तु कुछ लाभ न हुआ। यह सुनते ही अमराव सिंह जी बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने अजमेर तार दिया परन्तु उत्तर न आया। इससे और चिन्ता बढ़ी। सायंकाल दूसरा तार दिया परन्तु पता न चला। अगले दिन प्रात: जवाबी तार दिया तो उत्तर मिला कि स्वामी जी जयपुर गये। उसने तो एक प्रकार से उस ब्राह्मण के कथन की पूरी-पूरी पुष्टि ही कर दी। उसी समय स्वामी जी को तार दिया गया।

सायं समय जयपुर से तार आ गया कि मैं जयपुर में सुकुशल हूँ तब निश्चय हुआ कि विरोधी लोग क्या-क्या भ्रामक मिथ्या समाचार प्रचारित करते हैं। इसी प्रकार रिवाड़ी के एक व्यक्ति का पत्र आया कि मैंने सुना था कि आप मर गये हैं अत: बड़ा शोक था अब आपके जीवित होने का पता लगने से अत्यधिक प्रसन्नता हुई है। इसके पश्चात् स्वामी जी हरिद्वार गये तो महाराज जम्मू कश्मीर का पत्र लेकर एक व्यक्ति आया और उसने कहा

कि किसी ने लिख दिया था कि स्वामी जी का निधन हो गया।[1]

## १३. नाम के भूखे क्या-क्या करते हैं?

हरिद्वार के कुम्भ मेला पर जब श्रद्धाराम ने किसी प्रकार की दाल गलती न देखी तो एक विचित्र चतुराई से कार्य लिया। उसने गोपाल शास्त्री आदि को साथ मिलाया। कुछ साधुओं को फुसलाया कि तुम सभा में आकर यह कहो कि हम स्वामी दयानन्द के उपदेश सुनकर बिगड़ गये थे। अब प्रायश्चित्त कराइये! और ऐसा ही किया गया और उन्होंने दो सहस्र व्यक्तियों की भीड़ में यह बात कही तथा सारे मेले में इस बात का प्रचार किया गया। परन्तु जब सारी कार्यवाही हो चुकी तो गोपाल शास्त्री को बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि बड़ा मूर्ख हूँ जो ऐसे पाखण्डियों के साथ मिलकर अत्याचार कर रहा हूँ। वह उसी समय पृथक् हो गया और **उसने विद्या प्रकाशक पत्रिका में पत्र प्रकाशित करवाकर सारा भाण्डा फोड़ दिया।** उसने यह भी लिखा कि वह साधु तथा ब्राह्मण जो सभा मध्य किये गये, वे तो स्वामी जी को कभी मिले भी नहीं। वे थे भी सब बनावटी साधु। यदि कोई केस करता तो विचित्र भेद खुलते। इस प्रकार श्रद्धाराम लोगों को धोखा देकर आप प्रसिद्धि प्राप्त करता रहा।[2]

---

१. यह एक साथ एक जैसे ही समाचार इस प्रसंग में देने का लेखक का प्रयोजन यह बताना है कि इस परोपकारी महात्मा के विरोधियों ने उनके मिशन के प्रसार में रोड़ा अटकाने के लिये क्या नहीं किया। घटिया से घटिया मिथ्या समाचार प्रचारित करके जनता को भ्रमित किया गया। विष दिया गया। यातनायें दी गईं। वार प्रहार किये गये। टाँग तोड़ी गई। गालियाँ व धमकियाँ दी गईं। इतना विरोध आधुनिक युग में और किसका हुआ? 'जिज्ञासु'

२. कैसी विचित्र बात है कि सब पौराणिक मन्दिरों में उसकी रचित आरती 'जय जगदीश हरे' गाई जाती है परन्तु श्रद्धाराम पक्का नास्तिक था। यह उसने अपनी पुस्तक 'सत्यामृत प्रवाह' में लिखा है। पहले भी हम बता चुके हैं कि यह उसके मरणोपरान्त छपी थी। एक नास्तिक आस्तिकों का शीर्षस्थ नेता बनकर लोगों को बहकाता व ठगता रहा। 'जिज्ञासु'

वह स्वयं ही पत्रिकाओं में अपने कार्य को छपवाता व प्रचारित करता था। इस प्रकार के व्यक्ति के विद्वेष विरोध से स्वामी जी सरीखे विद्वान् पुरुष के कार्य की क्या क्षति हो सकती थी?

**चतुर्भुज की चतुराईः–** एक व्यक्ति चतुर्भुज कई स्थानों पर जाकर स्वामी जी के विरोध में अनाप शनाप कहता था। कई स्थानों पर तो उसके दूषित बोलचाल के कारण स्वामी जी के विरोधियों ने भी उसे निकाल दिया था। एक–दो स्थानों पर उसने मुसलमानों के साथ मिलकर भी श्री स्वामी जी का विरोध किया तथा एक मकान में बहुत से लोगों को एकत्र करके सज्जनों पुरुषों द्वारा स्वामी जी को आमन्त्रित किया। वह वहाँ विवाद दंगा करवाना चाहता था। परन्तु वह प्रत्येक अवसर पर विफल रहा। काशी में उसने पं० जुगल किशोर को अपने साथ गांठा और यह सुझाव दिया कि ऐसी विचित्र बात उड़ायें, फैलायें जिससे सभा भी प्रसन्न हो जाये तथा हमारा नाम धर्मात्माओं में चमके।

**नाटक तो अच्छा किया:–** इसके अनुसार एक विज्ञापन छपवाकर नगर में लगवाया तथा सभा में पढ़ा। यह विज्ञापन चार व्यक्तियों की ओर से था। भाव यह था कि हम लोग दुर्भाग्यवश वेदार्थ जानने के लिए दयानन्द सरस्वती के पास गये परन्तु हमने उनसे नाना प्रकार की वेद–विरुद्ध बातें सुनीं। तब हमने काशी की ब्रह्मामृत वर्षिणी सभा के सब विद्वानों से अपने सन्देह दूर किये और अपने वैदिक गुरु पं० जुगल किशोर जी के उपदेश से यथा बुद्धि प्रायश्चित्त कराया तथा विशेषर आदि देवों के दर्शन करके हम वेदाभ्यास की उच्चता प्रकट करते हैं तथा प्रतिज्ञा करते हैं कि निज गुरु–निर्दिष्ट मार्ग से दूर न होंगे।

यह विज्ञापन सभा में पढ़ा गया तो बहुत लोगों ने प्रसन्न होकर न चाहा कि इन चार व्यक्तियों के दर्शन भी तो करें। तदनुसार बाबू नारायण नाम के एक व्यक्ति ने पूछा कि वे चार व्यक्ति कहाँ हैं? पण्डित जी क्रोध से लाल पीले होकर कहने लगे कि हम उनको अगली सभा में लेते आवेंगे।

**पोल खुलते देन न लगी:**– परन्तु विज्ञापन तो केवल कृत्रिम था और एक दिल्लगी थी। चारों को लायें तो कहाँ से? लगे इधर उधर लड़कों को सिखाते कि हमारे साथ चलकर ऐसा वैसा कह देना परन्तु माने कौन? तथा कौन लोगों में अपने को तिरस्कृत करवाये? तथा अपयश पाये। फिर पण्डित जी दूसरी सभा में एक दूसरे व्यक्ति को लाये। उसका नाम पूछा गया तो वह बोला रामकृष्ण दूबे परन्तु विज्ञापन में छपा रामप्रसाद दूबे। कृत्रिम नाम याद ही न रहा। इस कारण से भूल गया। फिर उससे पूछा गया, **"क्या तुम स्वामी जी के पास गये थे।"**

उसने उत्तर दिया, **"कभी नहीं।"**

इस पर विज्ञापन देने वाले पं० जुगल किशोर की अच्छी पोल खुल गई। लोगों ने कहा, "आपने झूठमूठ विज्ञापन क्यों छपवाया?"

**स्वामी विशुद्धानन्द को गाली!:**–इस पर वह क्रोध से कुछ का कुछ कहने लगा। यह वाक्य भी उसके मुख से निकला, **"जिसने दयानन्द का मुँह तक देखा हो वह हिन्दू का बीज नहीं।"**[१]

इस पर बाबू नारायण सिंह ने कहा, "शास्त्रार्थ में महाराज काशी नरेश, विशुद्धानन्द, बाल शास्त्री आदि सहस्रों हिन्दू उपस्थित थे। आप एक प्रकार से यह गाली उन्हीं को दे रहे हैं। अन्त में सभा ने प्रस्ताव करके जुगल किशोर को सभा से निष्कासित कर दिया। निकलते समय उसने बहुत चीत्कार व शोर मचाया, कोलाहल किया। मारपीट तक की स्थिति बन गई परन्तु ईश्वर कृपा से शान्ति भंग न हुई। इस प्रकार चतुर्भुज की बुद्धिमत्ता ने

---

१. देखी मूर्ख हिन्दुओं की पोप लीला गो खाने वाले गोरे ईसाई शासकों व मुसलमान शासकों व नवाबों का मुँह देखकर तो ये हिन्दू का ही बीज रहे और वेद रक्षक, गो रक्षक, स्वदेश भक्त, जाति रक्षक बाल ब्रह्मचारी दयानन्द को देखने से ये इतने पतित हो गये। 'जिज्ञासु'

जुगल किशोर को ये दिन दिखाये।

**आगरा में चतुर्भजः**–इस प्रकार आगरा में भी यहाँ–यहाँ चतुर्भुज ने यही कुछ किया। व्याख्यान में यही कहता रहता कि कोई आर्य हो तो उठकर चला जावे। हम न उन्हें भाषण सुनाना चाहते हैं और न मुँह देखना, न अपना मुँह दिखाना चाहते हैं। वह अपने आलोचकों से तिरस्कृत ही होता था परन्तु स्वामी जी कहते थे कि वह ऐसी करतूत से रुक नहीं सकता। वह अपनी आजीविका के लिए सब बातें कर रहा है। यहाँ उसने एक व्यक्ति को नगर में बाजे के साथ घुमाया फिरवाया। यह कहा गया कि इसने पहले स्वामी जी का व्याख्यान सुनकर कण्ठी तोड़ डाली और अब प्रायश्चित्त कराया है।

एक और हरदयाल नामी ब्राह्मण एक आर्य सभासद के पास हिन्दी पढ़ाने के लिए छह–सात रुपये पर नौकरी करता था। उससे विज्ञापन प्रचारित करवाया कि मैं आर्यसमाज का पण्डित हूँ परन्तु शास्त्री जी से प्रायश्चित्त करवाकर आर्यों से पृथक् ही रहता हूँ। सब लोग दयानन्द के जाल से बचें परन्तु लोग जानते थे कि हरदयाल न तो समाज का सदस्य था और न ही उपदेशक अतः झूठ की पोल खुल गई तथा चतुर्भज को लज्जित होकर भागना पड़ा।[१]

## १४. ईर्ष्या की अग्नि धधक उठी

जब ऋषिवर चित्तौड़ में थे तो जीवन गिरि भी वहाँ आये।

१. पुरानी सनातनी पत्रिकाओं की फाईलें आप देखिये। 'सनातन धर्म पताका' हो अथवा 'मित्र विलास' आदि के अंक हों। सबमें आर्य समाज व ऋषि दयानन्द को कोसने के ही लेख मिलेंगे या फिर ऐसे–ऐसे प्रायश्चित्त के समाचार आप पढ़ेंगे। किसी को धर्मच्युत होने से बचाने का, पतित को शुद्ध करने का या विधर्मियों से टक्कर लेने वाला एक भी समाचार पढ़ने का सनातनी पत्रों में नहीं मिलेगा। चतुर्भुज हो या ज्वालादत्त हो, गिरधर शर्मा हो कालूराम अथवा माधवाचार्य सब ऋषि दयानन्द की निन्दा को ही सनातन धर्म–प्रचार मानते थे। 'जिज्ञासु'

पहले शास्त्रार्थ का विचार बना फिर राजकवि ने यह सुझाव निरस्त करवा दिया। कारण यह था कि दोनों उन्हीं के द्वारा आये थे। इस पर जीवन गिरि बहुत प्रसन्न हुये कि चलो बड़े सहज ढंग से मान रख लिया परन्तु जब देखा कि राणा जी स्वामी जी का बहुत सन्मान करते हैं तो बहुत व्यथित हुए।

दो मास के पश्चात् स्वामी जी प्रस्थान करने लगे तो महाराणा सज्जनसिंह जी ने बग्घी भेजकर स्वामी जी को बहुत सन्मान से दुर्ग में बुलवाया तथा शीघ्र पुनः आने की भी विनती की। इससे जीवन गिरि को और भी ईर्ष्या हुई परन्तु जब महाराणा ने ऋषि जी को पाँच सौ रुपये तथा अन्य दरबारियों ने दो सौ रुपये भेंट किये तथा अत्यन्त श्रद्धा, मान-सन्मान के साथ सब दरबारी स्टेशन तक पहुँचाने गये तब वह ईर्ष्या की अग्नि में बहुत जल-भुन गया और जो मुँह में आया कहता रहा फिर झट चलने की तैयारी कर दी।

महाराणा को यह बात पता चली तो मिले बिना भी पाँच सौ रुपये भिजवाये परन्तु वह तो क्रोध-अग्नि से जला हुआ था और वह राशि नहीं ली और कहा कि तुमने दयानन्द को सन्मानित किया। हम यह नहीं लेते। क्रोध की प्रचण्ड अग्नि में जल-भुन कर वह वहाँ से चला गया।

## १५. सच्चे वेद भाष्य का विरोध

केवल अशिक्षित व मतांध लोगों ने ऋषि जी का विरोध नहीं किया, सुशिक्षित व विद्वान् लोग भी सत्य के प्रचार में विघ्न ही डालते रहे। वेद पर महीधर व सायण आदि के भाष्य जो आजकल मिलते हैं, इनके कारण वेद पर कई प्रकार के कलंक लगाये जाते हैं। इनमें वेदों के यथार्थ अर्थ हैं ही नहीं। हाँ, बुद्धि विरुद्ध अनुचित शाब्दिक अनुवाद है जो किसी भी देश के योग्य लोगों को खींच नहीं सकता। स्वामी जी ने वेदों के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने के लिए वेद भाष्य किया। राज्य कर्मचारियों व राज्य अधिकारियों सभी के विचार उनके विपरीत थे फिर भी स्वामी जी का प्रत्येक कार्य अनूठा व निराला समझा जाता था।

तथापि आपने कर्त्तव्य का पालन किया तथा सरकार से प्रार्थना की कि मेरा भाष्य कालेजों में लगवाया पढ़ाया जावे।

**शासक व वेद:**- शासक वर्ग धर्म को जानता ही नहीं था। केवल काग़ज़ी कार्यवाही कर सकता था। अत: सीनेट के सदस्यों का मत लिया गया। वे विचारे वेदार्थ की वास्तविक विधि जानते ही नहीं थे। सायण व महीधर से भिन्न पाकर उन्होंने विपरीत रिपोर्ट कर दी।[१]

स्वामी जी ने पुन: हिम्मत की। अब प्रार्थना पत्र के साथ आक्षेपों के उत्तर भी भेजे। पत्र–पत्रिकाओं में भी चर्चा हुई परन्तु बंगाल, उ० प्र० काशी, मद्रास इत्यादि सब स्थानों से विपरीत सम्मति ही मिली। शास्त्रार्थ अथवा समुचित जाँच की विधि सरकार की समझ में न आई। शासन एक कल्याणकारी आंदोलन की महत्ता को न मान सका या न जान सका। इस प्रकार यह शुभ आंदोलन रह गया।

परन्तु स्वामी जी ने भाष्य छपवाया। ईश्वर की कृपा से सब प्रकार को विघ्न बाधाओं को चीर कर दिन प्रतिदिन अधिक लोकप्रिय होता जाता है।

**इससे शिक्षा:**– सफलता का रहस्य मनुष्य के अपने ज्ञान व आचरण में है। बाह्य जगत् विरोधी हो अथवा अनुकूल, इससे कुछ नहीं होता। यदि परिस्थितियाँ प्रतिकूल हैं तो सफलता देर से प्राप्त होगी परन्तु मिलेगी अवश्य। जितनी कठिनता से विजय

१. सन् १९८३ में श्री प्रो० जयदेव जी आर्य ने मेरे सामने श्री ठाकुर अमर सिंह (श्री अमर स्वामी जी) से डी०ए०वी० के प्रो० वेदव्यास के वेद विषयक एक अनर्गल लेख की चर्चा की तो ठाकुर जी ने कहा, 'ये बिचारे यह सोचते हैं कि यदि गोरे साहब लोगों के मत के विपरीत हम कुछ लिखेंगे तो लोग हमें शिक्षित व स्कालर नहीं मानेंगे। इसी हीन भावना से वे राज्य अधिकारी ग्रसित थे। उन्होंने वही मत देना था जो मैक्समूलर आदि वेतन भोगी साम्राज्य व सूली के नौकरों का था। उनके उलट वे कैसे जा सकते थे। 'जिज्ञासु'

प्राप्त होती है, वह उतनी ही बड़ी है। जो कार्य बड़ी सहजता से होते हैं वे मानवीय महानता के भी परिचायक या कारण नहीं होते। खाने पीने से तो कोई भी महापुरुष नहीं बना अतः विघ्न बाधाओं का विचार बुद्धिमान लोग नहीं कर सकते। उन्हें धुन है तो अपने कर्त्तव्य पालन करने की। विघ्न उनकी दृष्टि में परछाईं सदृश है। जो मिट जाने वाले हैं। कठिनाइयों से घबराकर डोल जाने वाले वास्तव में अपने कर्त्तव्य को ठीक-ठीक नहीं समझते। कृषक ऋण लेकर भी अनाज का दाना-दाना करके खेत में बिखेरता है। हल चलाना, नलाई करना, सिंचाई करना तथा महीनों तक प्रतीक्षा करना ऐसे तप हैं जो उसे पकी पकाई फसलें देते हैं। अपने आप उगी घास फूस विघ्न डालती है। पाला तथा औले फसलें मारते हैं। असमय की वर्षा भी विनाश करती है परन्तु सारे जगत् के पालने करने के लिये अन्न मिलता ही आ रहा है।

**धीरज धर्म का पहल लक्षणः**- धर्म का लक्षण है धैर्य व साहस ही प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्ति के लिये ज्ञान व पुरुषार्थ का सच्चा सहयोगी होता है। तपस्वी दयानन्द ने विद्या, सदाचार तथा धृति तीनों को अपने जीवन में प्रत्यक्ष कर दिखाया। इसी से उसके जीवन में आर्यसमाज की स्थापना व उन्नति हुई तथा इसी से उसके पश्चात् भी आर्यसमाज का प्रभाव क्षेत्र बढ़ रहा है। विघ्न तो तब भी रहे तथा अब भी हैं। सूर्य जब से है मेघ तब से ही विघ्नकारक है परन्तु इस अस्थायी व साधारण रुकावट से सूर्य का नाश थोड़ा ही हो सकता है इस लिये बाहर की शिकायतें व दुःखड़ा रोना छोड़कर अपना बल बढ़ाओ तथा धर्म रक्षा रूपी कर्त्तव्य के पालन करने में उद्यत हो जाओ।

# द्वितीय सर्ग

## आसुरी आक्रमण

**जिसे है घाव की चिन्ता उसे समझे हैं ये घातक**
**प्रभु जी क्या किया जावे, यह घाव ठीक क्या होगा?**[१]

**डाक्टर की शल्य क्रियाः**–डॉक्टर रोगी को ठीक करना चाहता है। फोड़े को चीरकर पस निकाल, औषधि लगाकर स्वास्थ्य लाभ करवाना उसका प्रयोजन होता है। खेद है उस रोगी पर जो हृदय में सहन शक्ति नहीं रखता है छुरी काँटा सामने आते ही डॉक्टर को हत्यारा समझकर चिकित्सा करवाने से कतराता है। ऐसा व्यक्ति बचे भी तो कैसे? यह ठीक है कि डॉक्टर के छुरी काँटे के लगने से पीड़ा तो होती ही है। रोगी चिल्लाता है। दुःख के मारे डॉक्टर को कोसता है। उसे अन्यायी व हत्यारा तक कहता है। हाथ-पैर मारता और कई बार तो लात तक मार देता है परन्तु जो डाक्टर के समीप आया और जिसने उपचार करवाया, यह निश्चित जानिये कि स्वस्थ होकर डॉक्टर का कृतज्ञ होगा। और यदि न भी हो तो भी कोई हरज नहीं। डॉक्टर का उद्देश्य पूरा हो जाता है। वह रोगी का सच्चा हितैषी है।

वह रोगी के लात मारने व भला-बुरा कहने का बुरा नहीं मानता। यही स्थिति ऋषि दयानन्द की है। मत-मतान्तरों द्वारा फैलाई गई भ्रान्तियों का पस उसने निकाला। असत्य खण्डन का तीखा छुरी-काँटा देखते ही रोगी पहले भागे और जो उसके निकट हुये उसे सर्वप्रकार से पीड़ा यातना देते रहे। उसके प्राण हरण तक के उपाय सोचने लगे जैसा के आगे की घटनाओं से

१ यहाँ एक उर्दू का पद्य था। हमने उसका हिन्दी पद्यानुवाद कर दिया है। 'जिज्ञासु'

पता चलेगा परन्तु ईश्वर की प्रजा से सच्चा प्रेम करने वाले ऋषि का आचरण तो इस पद्य के अनुसार था:—

**बड़े क्रूर अन्यायी हो तुम यह जाना,**
**मैं फिर भी तुम्हारा भला तो करूँगा।**[1]

## १. मैं कारागार में डलवाने नहीं, मुक्त करवाने आया हूँ

अनूप शहर में सैयद मुहम्मद तहसलीदार थे। पूर्वाग्रह मुक्त होकर आपने स्वामी जी के सत्संग से लाभ उठाया। मुसलमान होने पर भी आप पर सत्य का ऐसा प्रभाव पड़ा कि आप वहाँ स्वामी जी के बहुत बड़े सहयोगी समझे जाते थे। यहाँ के ब्राह्मण श्री स्वामी जी द्वारा प्रतिमा पूजन के खण्डन से बड़े दु:खी थे। एक ब्राह्मण ने स्वामी जी को पान में विष दे दिया। स्वामी जी ताड़ गये और जाकर न्योली कर्म करते रहे। इससे विष के घातक प्रभाव से बचाव हो गया। आपने विष दाता को कुछ नहीं कहा। उपरोक्त तहसीलदार ने उसे बन्दी बना लिया। आप प्रसन्न थे कि स्वामी जी के शत्रु को पकड़ लिया। जब तहसीलदार स्वामी जी के पास आये तो आप उनसे बोले ही नहीं।

कारण पूछा तो आपने कहा, "मैं संसार को बन्दी बनवाने नहीं आया हूँ प्रत्युत कारावास से मुक्त करवाने आया हूँ। वह यदि अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता तो हम अपना सौजन्य क्यों छोड़ें?" इस पर अपील करके तहसीलदार महोदाय ने उसे छुड़वा दिया।[2]

## २. हमें भ्रम हो गया

श्री स्वामी जी महाराज गढ़ी में एक खत्री के यहाँ ठहरे थे। उसने सत्योपदेश से प्रभावित होकर कण्ठीमाला व मूर्तिपूजा का परित्याग कर दिया। वैरागियों को उसके परिवर्तन से हानि पहुँची तो वे बड़े रुष्ट हुए। उनमें प्रतिशोध की प्रबल भावना जागी।

---

१. यहाँ एक-एक उर्दू का पद्य था। हमने उनका हिन्दी पद्यानुवाद कर दिया है। 'जिज्ञासु'

२. यह घटना सन् १८७० की है। 'जिज्ञासु'

कानपुर के निकट वैरागियों की एक गद्दी थी। वहाँ के वैरागियों ने एक साधु को देखा। उसका नाम विरजानन्द था। यह उसे दयानन्द समझे। उसे स्नान के बहाने डुबोने लगे। वह तैरना जानता था। डुबकी लगाकर पार हो गया।

इसी प्रकार सौरों में विरोधियों ने यह षड्यंत्र रचा कि सोते हुए स्वामी जी महाराज को गंगा में फेंक देंगे अथवा विष दे देंगे। उन्होंने अपने इस निश्चय के अनुसार एक अन्य साधु को ऋषि दयानन्द के भ्रम में चारपाई सहित उठाकर गंगा में फेंक दिया। गंगा में गिरते ही उसने चीत्कार किया तो उसकी आवाज पहचानकर उन्होंने उसे बाहर निकाला। खेद प्रकट करते हुए कहा कि हमें भ्रम हो गया था।

## ३. हम इस गपाष्टक को मार देंगे

जब स्वामी जी शहबाज़पुर थे तो गंगा पार से दो वैरागी साधु उन्हें मार देने के लिए वहाँ पहुँचे। एक ने ठाकुर गंगा सिंह को अपना मित्र समझकर उनसे कहा, "मुझे अपनी तलवार दे दें। हम इस गपाष्टक को मार देंगे।"

ठाकुर ने कहा, "मैं प्रतिदिन उनकी वार्ता सुनता रहा हूँ। वे बहुत बड़े महात्मा हैं। दुष्टो! यदि यह बात मुँह से फिर निकाली तो तुम्हें मार दूँगा। जाओ! मेरे सामने से दूर हो जाओ।"

फिर वह ठाकुर दो–चार मनुष्यों को साथ लेकर स्वामी जी के पास पहुँचा। ये लोग सशस्त्र थे। उसने स्वामी ज़ी को सब बात सुनाई तो महाराज बोले, "उनका क्या सामर्थ्य है कि वे हमको मारे?"

तथापि वे लोग सावधानी के लिये रात भर वहीं पहारा देते रहे।

## ४. मेरे अंग संग भगवान है। क्यों मौत की चिन्ता करूँ?

श्री गोपाल एवं उसके साथी संगी अपनी सब योजनाओं में विफल रहे तो कुछ समय पश्चात् पहले तो ज्वलाप्रसाद जी ने

आकर स्वामी जी का अपमान किया। स्वामी जी के रोकते-रोकते भी कई व्यक्तियों ने उसे पीटा फिर फेरी वाले बाबा नामी साधुओं व गंगा पुत्रों के परामर्श से कुछ धूर्तों के साथ स्वामी जी के प्राण हरण को वे लोग आये परन्तु असफल रहे। फिर ज्वालाप्रसाद का समधी ठाकुरदास २०-२५ व्यक्तियों को लेकर स्वामी जी को मारने के लिए पहुंचा परन्तु स्वामी जी के बल पौरुष व पकड़े जाने के डर से भाग गया। लाला जगन्नाथ आदि दो-तीन सिपाही लेकर पहुँचे परन्तु वे पहले ही भाग खड़े हुए।

लाला जी ने सब समाचार सुनकर कहा कि आप भीतर के भवन में ही रहें परन्तु श्री स्वामी जी महाराज ने कहा, "यहाँ तो मेरी रक्षा आप करेंगे परन्तु अन्यत्र कौन करेगा? वह सर्वव्यापक परमात्मा सर्वत्र मेरी रक्षा करने वाला है। मुझे किसी का भय नहीं है।"

### ५. परोक्ष सहायता

कहीं स्वामी जी ने आचार्यों के मत का खण्डन किया तो उनके अनुयायी ठाकुर लोग दोपहर को उन्हें मारने आये। संयोग से वे लोग वहाँ बैठे थे जहाँ एक वृक्ष के तले कुछ लोग विश्राम कर रहे थे। यह पर्वत से गंगोत्री का जल भर लाते हैं। ये लोग अति सरल स्वभाव के होते हैं। इन्होंने ठाकुरों की दुर्भावना का पता लगने पर अपने कुत्ते उनके पीछे छोड़ दिये तथा लाठियों से उनका सामना किया।

### ६. काशी में मारने के षड्यंत्र

काशी पर प्रथम चढ़ाई के समय ही स्वामी दयानन्द जी ने काशी के सारे रोब को धूलि धूसरित कर दिया तो औरों के विरोध के अतिरिक्त कुछ बनारसी गुण्डों ने भी एका करके स्वामी जी को मार देने की सोची। साधु जवाहरदास जी को पता चला तो आपने स्वामी जी को इसकी सूचना दी।

स्वामी जी ने कहा, "आप निश्चिन्त रहें। ऐसी घटनायें तो मेरे साथ आरम्भिक काल से ही हो रही हैं। हम बालक ही थे कि

किसी भूपति ने हमारे खेत पर अधिकार कर लिया। तब हम तलवार लेकर गये और जब तलवार निकाल कर उनके पीछे दौड़े तो सबको भगा दिया। इसी प्रकार यदि अब ऐसी ही घटना घटे तो दस-पन्द्रह के लिए तो मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ।" उस समय से एक लट्ठ स्वामी जी ने अपने पास रख लिया।

एक बार एक व्यक्ति स्वामीजी के लिए भोजन लाया परन्तु आप तो पहले ही भोजन कर चुके थे अतः उसकी विनती अस्वीकार कर दी। तब वह बोला, "अच्छा पान ही ले लीजिये।"

स्वामी जी ने हाथ में लिया। उसे खोला। वह उठकर भाग खड़ा हुआ। कारण यह था कि उसमें विष था। हस्पताल में उसकी जाँच की गई। उसमें विष पाया गया।

## ७. यह मन से तो पाप कर चुके

एक दिन मिर्ज़ापुर में स्वामी जी स्नान कर रहे थे। उसी समय विन्ध्याचल से कुछ यात्री आये। वे बातें कर रहे थे कि स्वामी तो नास्तिक है। इसके समीप भी नहीं जाना चाहिए। यदि कोई जावे तो उसका सिर काट ले। स्वामी जी ने यह सब कुछ सुन लिया। वे अपने डेरे पर आये और कहा कि मिर्ज़ापुर के लोग ऐसी बातें कर रहे थे। यद्यपि जब तक परमेश्वर न मारे मुझे कोई नहीं मार सकता परन्तु वे मन से तो पाप कर ही चुके। यदि उनके वश में होता तो वे अवश्य ऐसा कर देते।

## ८. आप बाहर न जाया करें

वृन्दावन में तो रंगाचार्य शास्त्रार्थ करने का साहस ही न कर सका परन्तु उसकी उद्दण्ड चेलों ने कई बार स्वामी जी को मार देने का विचार बनाया परन्तु वे सफल न हुए। एक बार जब उन्होंने हुड़दंग मचाने का निश्चय किया तो बलदेव सिंह आदि ने कहा, "स्वामी जी! आप बाहर न जाया करें।"

स्वामी जी ने कहा, "कल को सम्भवतः आप यह कहेंगे कि आप भीतर छुपकर बैठा करें।"

इस पर किसी ने कुछ भी न कहा।

## ९. चौबे गालियाँ देते और लाठियाँ लिये पहुँचे

मथुरा में जब शास्त्रार्थ को कोई व्यक्ति न आया तो स्वामी जी चलने को तैयार हुए परन्तु डिप्टी देवी प्रसाद ने कहा, "आज अवश्य शास्त्रार्थ होगा।"

स्वामी जी रुक गये। शास्त्रार्थ तो क्या होना था। चौबे चार पाँच सौ की भीड़ बनाकर गालियाँ देते हुए दंगा झगड़ा करने की भावना से पहुँच गये। स्वामी जी के पास जो व्यक्ति थे उन्होंने शोर सुनकर फाटक बन्द कर दिया। उनमें से कई घबराने लगे। श्री स्वामी जी पूर्ववत् शान्त थे। ठीक समय पर कर्णवास से स्वामी जी के पन्द्रह भक्त वहाँ पहुँच गये। द्वार खोल दिया गया। फिर देवी प्रसाद जी डिप्टी कोलैक्टर तथा मथुरा से कुछ धनी मानी प्रतिष्ठित सज्जन भी आ गये तथा पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए बुलाने लगे परन्तु सामने आकर बोलने का किसी को भी साहस न हुआ। चौबे तो केवल लाठी का शास्त्र तथा गाली का प्रमाण ही रखते थे अत: डिप्टी जी ने उन्हें बिखेर दिया।

## १०. प्रयाग में विष देने का प्रयास

एक दिन स्वामी जी समाधि से उठकर आये और पं० सुन्दरलाल जी अधीक्षक वर्कशाप (जो अपने मित्रों सहित आय बैठे थे) की ओर देख कर हँसे। हँसने का कारण पूछा तो बोले, "एक व्यक्ति मेरी ओर आ रहा है। तनिक ठहरिये। तमाशा की बात है।" एक आध घण्टा के पश्चात् उन्होंने कहा, "महाराज! कोई आया तो नहीं।"

स्वामी जी ने कहा, "अब निकट ही है। तुरन्त आवेगा। पाँच सात मिनट में एक व्यक्ति कुछ लेकर आया। स्वामी जी के सामने रखकर नमो नारायण कहते हुए कहा, "आपके लिए यह भेंट लाया हूँ।"

स्वामी जी ने कहा, "इसमें से थोड़ा आप लीजिये। उसने इनकार कर दिया। स्वामी जी ने डाँटते हुए कहा, "अवश्य खाओ।" वह सुकचाया। स्वामी जी ने कहा, "देखो, यह हमारे

लिये विषैली मिठाई लाया है।" पं० सुन्दरलाल जी ने एक व्यक्ति से कहा, "जाओ, पुलिस को लेकर आओ।" स्वामी जी ने उसे रोक दिया और उस ब्राह्मण की ओर मुस्कराते हुए कहा, "देखा, इसकी आकृति कैसे हो गई है। भय के कारण वह अधमरा सा हो गया। इसको दण्ड मिल गया। अतः पुलिस को मत लावें, उस ब्राह्मण को समझाकर स्वामी जी ने पृथक् कर दिया। पं० सुन्दरलाल जी ने कुछ मिठाई एक कुत्ते को डाली। वह शीघ्र व्याकुल होकर मर गया।

## ११. मुम्बई में मारने का षड्यंत्र

मुम्बई में ऋषिवर के आगमन पर धार्मिक क्षेत्र में बहुत हलचल होने लगी। जीवनजी गोसाईं नाम के एक धर्माचार्य को इससे बहुत क्षति पहुँच रही थी। उसने श्री महाराज के कर्मचारी बलदेव को बुलवाकर मिठाई भी दी गई। कि यदि तुम स्वामी जी को मार दो तो मैं तुम्हें एक सहस्र रुपये दे दूंगा मिठाई पाँच सौ रुपये की। एक सहस्र रुपये देने का लिखित आश्वासन था। किसी ने स्वामी जी को आकर बता दिया कि आपका व्यक्ति जीवनजी के पास खड़ा है।

जब वह लौटा तो स्वामी जी ने पूछा, "क्या तुम जीवनजी को मिले?"

उसने कहा, "हाँ महाराज।"

ऋषि ने पूछा, "फिर क्या निर्णय हुआ?"

उसने ऊपर वाली सारी बात बता दी और पत्र भी दिखा दिया।

ऋषिवर ने कहा, **"मुझे कई बार विष दिया गया परन्तु मैं मरा नहीं और अब भी नहीं मरूँगा।"**

बलदेव ने कहा, "महाराज, मेरे कुल का काम विष देना नहीं है फिर उस ऐसे पुण्यात्मा को जिससे सकल सृष्टि का कल्याण हो रहा है।"

स्वामीजी ने मिठाई तो फेंकवा दी। पत्र फाड़ दिया और कहा,

"आगे कभी उसके हाँ मत जाना।"[१]

जब इस ढंग से गोसाईं जी सफल नहीं हुए तो चार व्यक्ति नियत किये कि सागर तट पर ऋषि भ्रमणार्थ जाते हैं। आते जाते उनको समाप्त कर दिया जाये। जिस सड़क पर श्री महाराज प्रतिदिन जाते थे उस पर भी वे घात लगाय रहते थे। एक दिन सड़क पर आमना सामना हुआ परन्तु महाराज के तेजस्वी तमतमाते मुखड़े को देखकर मारना तो क्या वे लोग एक शब्द तक न बोल सके। तब ऋषिवर ने कहा, "हमारे मारने के लिये तुम्हीं लोग आते हो?"

उनके हृदय का सकल खोट प्रकट हो गया तथा वे फिर कभी इधर नहीं आये। स्वामी जी उधर ही जाते थे। जीवन जी गोसाईं सब प्रकार से विफल होकर मद्रास भाग गया।

## १२. इन पागलों को क्षमा कर दो

झेलम (पश्चिमी पंजाब) में अज्ञानी मूर्ख लोग कई प्रकार के दु:ख कष्ट देते रहे। ढेले व ईंटें तो प्राय: फेंकी ही जाती थीं। रामकृष्ण नाम के एक व्यक्ति ने ईंट फेंकी परन्तु वह लगी नहीं। निशाना चूक गया। एक बंगाली बाबू ने पुलिस का व्यक्ति भेजकर उसे पकड़वा दिया। परन्तु स्वामी जी महाराज ने उसे क्षमा कर दिया।

इसी प्रकार और शरारती लोगों को सभ्य जन धमकाते और पकड़वाते भी परन्तु स्वामी जी महाराज हँसकर टाल देते रहे और कहते थे, "भाई! आप बुद्धिमान् हैं इन पागलों को क्षमा करके जाने दीजिये। इनका एक ही उपचार है कि इन्हें सत्योपदेश दिया जावे।"

एक बार पोंगा पंथी ब्राह्मणों ने एकता करके रात्रि समय

---

१. यह कितनी बड़ी बात है कि उदारतम आचार्य दयानन्द ने इतना कहकर ही इस बात को वहीं समाप्त कर दिया। 'प्रेम' जी की पंक्ति है : 'वह उदार दिल दयानन्द का घड़ी भर मुझे भी उधार दे।' 'जिज्ञासु'

स्वामी जी को मारने की योजना बनाई। मेहता ज्ञानचन्द्र को इसका पता चला गया। स्वामी जी ने इसकी चर्चा करने पर कहा, "तुम कुछ मत करो। सात आठ व्यक्तियों के लिये मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ।"

## १३. हम किसी भी मनुष्य के आश्रय नहीं हैं

ऋषिवर अमृतसर पधारे तो हर की पौड़ी (हरिद्वार) तथा अमृतसर के सरोवर में स्नान करने की महिमा की भी समीक्षा एक व्याख्यान में कर दी। इससे कुछ निहंग बहुत क्रुद्धित हुए। एक हितैषी ने आकर आपको सूचना दी कि कुछ निहंग आपको मारने पर तुले हुये हैं। वे कहते थे कि रात्रि को कुछ व्यक्ति आपके पास सोते हैं। अकेले हुये तो अवश्य मार डालेंगे।

स्वामी जी ने प्रभु–प्रेम के जोश में आकर सबको यह कह दिया कि रात्रि को यहाँ कोई भी न सोय। हमको जिसने जगत् के उपकार की प्रेरणा दी है हम उसी के आश्रय रहते हैं। देखेंगे कोई क्या करता है। उस अखण्ड ब्रह्मचारी के सामने आने का किस में साहस था। गीदड़ भमकियों की बातें बस आई गई हो गईं।

## १४. सत्य कहने पर शीश कटता है तो काट लो

स्वामी जी कर्णवास उ० प्र० में थे कि गंगा स्नान के मेले पर बरौली के राव कर्णसिंह वहाँ आये। उनके कर्णवास में ससुराल थे। रात्रि समय राव ने रास मण्डल करवाया। पण्डित लोग श्री स्वामीजी को बुलाने आये। आपने उत्तर दिया कि हम ऐसे निन्दनीय कर्म में भाग नहीं लिया करते। खेद है कि आप अपने महापुरुषों के स्वांग बनाते तथा उन्हें नचाते हैं। मनुजी का तो कथन है कि पुरुष को स्त्री तथा स्त्री को पुरुष वेश में देखना बहुत बड़ा पाप है।

जब राव महोदय को पता चला कि यह तो खण्डन करते हैं तथा तीर्थ एवं तिलक टीका करने का भी निषेध करते हैं तो अगले ही दिन पण्डितों व अपने कर्मचारियों को लेकर स्वामी जी के डेरे पर आ गये। स्वामी जी उपदेश कर रहे थे। इन लोगों

के तिलक देखकर मुस्कराय तथा आदर सत्कार से कहा, "विराजिये, बैठिये।"

राव कर्णसिंह ने कहा, "कहाँ बैठें?"

स्वामी जी ने कहा, "जहाँ इच्छा हो।"

इस पर राव ने कहा, "जहाँ तुम बैठे हो, वहीं बैठेंगे।"

स्वामी जी महाराज ने कहा, "आईये, यहीं बैठिये।"

राव ने पूछा, "आप रासलीला में नहीं आये। सब पण्डित व साधु लीला देखने आते हैं। ब्राह्मण संन्यासी होकर ऐसा करना तो बहुत बुरा है।"

स्वामी जी महाराज ने कहा, "तुम कैसे क्षत्रिय हो? तुम्हारे सामने तुम्हारे महापुरुषों को नचाया जावे तो तुम प्रसन्न होते हो। उस समय आप लोगों को लज्जा नहीं आती।"

राव कर्णसिंहः—"आप गंगा आदि की निंदा करते हैं। हमारे सामने यदि खण्डन किया तो मैं बुरी तरह बर्त्ताव करूँगा।"

स्वामी जी महाराज ने कहा, "हम खण्डन नहीं करते। जो वस्तु जैसी है वैसी ही कहते हैं। सत्य कहने में हमें किसी का भी भय नहीं है। गंगा में यह गुण है कि इसका जल शुद्ध है। यह शरीर की शुद्धि व प्यास बुझाने का कार्य देता है।"

राव कर्णसिंह ने कहा, **"गंगा गंगेति"** श्लोक पढ़कर देखो गंगा की कितनी महिमा है। नाम लेने व दर्शन मात्र से कई जन्मों के पाप कटें।"

इस पर स्वामी जी ने कहा, "यह गप्प है। जल से मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है। वेदानुकूल सत्कर्मों के करने से ही मुक्ति होती है। गंगा का नाम लेकर पोपों ने आप लोगों को बहका रखा है। इसी प्रकार देखो तुम क्षत्रिय हो परन्तु वैरागियों सदृश लम्बे-लम्बे तिलक अपने मस्तक पर भिखारियों के सदृश क्यों लगाय है। भुजायें क्यों दग्ध की हैं? चण्डाल सरीखी आकृति कर दी है।"

राव कर्णसिंहः— बात होश से करो। यह तुमने क्या कहा?

सावधान! तलवार उठाकर एक पाँव के बल पर बैठा बातें करता था। दस बारह सशस्त्र नौकर चाकर साथ थे।

टीकाराम भयभीत हुए तो स्वामी जी ने कहा, "भय क्यों करते हो? जो कुछ कहा है, सत्य कहा है।"

टीकाराम:– राव जी क्रोध क्यों करते हो? स्वामी जी का भाव यह है कि आपने क्षत्रिय होकर भिखारियों का चिह्न क्यों धारण किया है? राव और भी क्रुद्धित होकर स्वामी जी को अपशब्द कहने लगा परन्तु स्वामी जी हँसते रहे। कहा, "देखो भाई! शास्त्रार्थ से बात करनी हो तो सभ्यता से बोलो। अपने गुरु रङ्गाचार्य को बुलवा लो। प्रतिज्ञा लिख लो कि यदि वह हारे तो अपना मत छोड़ दे। प्रतिपक्षी का मत स्वीकार करना होगा। गाली आदि देना तो मूर्खता व बालकपन है।"

अब राव ने कहा, "रङ्गाचार्य के सामने तो आप कीड़े के तुल्य हैं। तुम जैसे तो उसके आगे जूतियाँ उठाते हैं।"

स्वामी जी ने भी उत्तर में कहा, "रङ्गाचार्य की मेरे सामने क्या गति है?"

राव ने तलवार की मुट्ठ पर हाथ रखा ही था। उसने श्री महाराज पर तलवार चलाई। तब ऋषिवर ने गर्जकर उसके हाथ से तलवार छीन ली। पृथिवी पर टेक कर तलवार तोड़ दी और कहा कि कहे तो यह तलवार तेरे शरीर में घूँस दूँ? यह भी कहा कि अधिक बोलने से क्या लाभ? लड़ना ही है तो जयपुर, जोधपुर आदि के राजाओं से जाकर लड़ो और शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरु को बुलवा कर देख लो।

इस पर ठाकुर किशनसिंह आदि लट्ठ लेकर खड़े हो गये और कहा कि महात्मा को कुछ कहा तो तेरी सारी डींग हम निकाल देंगे। उपदेश सुनना है तो सुन अन्यथा यहाँ से चला जा।

इसी अवसर पर जब राव कर्णसिंह ने म्यान से तलवार निकाली तो श्री महाराज ने आत्मविश्वास से भरपूर हृदय से कहा, "यदि सत्य कहते हुए सिर कटता है तो तुम्हें अधिकार है

काट लो।"[१]

## १५. कौन कहता है कि अन्यायी को दण्ड नहीं मिलता?

सम्वत् १९२८ में राव कर्णसिंह पुन: कर्णवास आया। श्री स्वामी जी महाराज भी कीर्तिक मास सम्वत् १९२८ को कर्णवास में एक बार फिर फेरी डालते हुए पधारे। राव कर्णसिंह का उतारा भी स्वामी जी के डेरे के समीप ही एक बारहदरी में था। वह गत बार का ईर्ष्या द्वेष अभी तक मन में पाले हुए था। उसके साथ नाचरङ्ग की सकल सामग्री वेश्यायें, रासधारिये आदि सब कुछ था। वह स्वामी जी को मरवा देने की सोचने लगा। वह वैरागियों को भेजकर स्वामी जी का सिर कटवाना चाहता था। उन्हें आश्वासन दिया कि मैं रुपये लगाकर तुम्हें बचा लूँगा और यदि एक आध मर भी गया तो तुम्हारी कौन सी पत्नी व बाल बच्चे पीछे रोने वाले हैं। किसी को इस दुष्कर्म के करने का साहस न हुआ।

एक रात कर्णसिंह ने तलवारें देकर इसी प्रयोजन से तीन व्यक्ति भेजे। महर्षि ने उनकी आवाज़ सुन ली। वे उठकर ध्यान लगा बैठ गये। वे दो बार नहीं तीसरी बार आये। राव का दबाव उन पर अत्यधिक था। कुटी में जाने लगे। कहा, "कुटी में कौन है?" स्वामी जी ने हुङ्कार किया तथा भूमि पर अपना पाँव मारा। वे हुङ्कार सुनकर भयभीत होकर गिर पड़े। उनके हाथों से तलवारें गिर गईं।

वे जैसे कैसे करके वहाँ से भागे।

ग्राम वासियों ने ठाकुर कैथल सिंह को स्वामी जी की कुटिया में सोने को कहा हुआ था। इस घटना को देखकर उसने श्री महाराज से किसी गुफा में चलने का कहा।

ऋषिवर ने कहा, "मुझको कोई मार नहीं सकता। साधु लोग गृहस्थों के घरों में कहाँ रहते हैं? हमारा रक्षक तो वह परमदेव

१. यह घटना संवत १९२५ (सन् १८६८ ई०) की है। 'जिज्ञासु'

है। कोई मनुष्य हमारा रक्षक नहीं है।" उसे समझाया तो बहुत परन्तु वह दौड़कर कर्णवास गया। ठाकुर किशन सिंह को जगाया। वह कुछ ठाकुरों व ब्राह्मणों को लेकर दौड़ा आया। राव कर्णसिंह को ललकारा। यदि सच्चा क्षत्रिय व वीर है तो मेरे सामने आ।

स्वामी जी ने कहा, "वह तो भीरु है। उस पर क्रोध मत करें। इतने में वहाँ २५-३० पंजाबी शस्त्रधारी जवान सैनिक भी आ गये। राव कर्णसिंह को बहुत अपयश मिला। किशन सिंह ने भी उसे पाठ पढ़ाने की प्रतिज्ञा कर ली। राव कर्णसिंह के श्वसुर ने उस समझा कर कहा, "अविलम्ब अपने घर लौट जा।"

घर जाकर रुग्ण हो गया। पागल होकर वस्त्र फाड़ने लगा। प्रयाग में पचास सहस्र रुपये का अभियोग हार गया। उसकी बड़ी दुर्गति हुई। अपने मत सम्प्रदाय की मान्याताओं के विपरीत मांस-मदिरा का सेवन करने लगा। उसकी दुर्दशा एक उन्मत्त की सी थी।

कौपीनधारी ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द जी का साहस, धीरज तथा चित की शान्ति एवं हृदय की उदारता वन्दनीय है।

# तीसरा सर्ग

## दैवी शक्ति का प्रकाश

**रात जब जाती रही दिन का उजाला हो गया**
**सत्य का निश्चय जगत् में बोल बाला हो गया॥**

कितनी भी घटाटोप काली घटायें घिर-घिर कर आयें अन्ततः मेघ छिन्न भिन्न होकर रहेंगे। रात्रि कितनी भी अंधेरी हो। दीपकों तथा तारों के प्रकाश को अपने विस्तृत राज्य के सामने कितना भी तुच्छ सिद्ध करे परन्तु सूर्योदय होते ही रजनी अपना बोरिया बिस्तरा बाँधकर विदा होने पर विवश होती है। सत्य के सामने असत्य की भी यही स्थिति है। मत मतान्तर धर्म मार्ग में कितना भी अंधकार फैलायें तथा जन साधारण को कितना भी भ्रमित करें व फँसायें वेद भानु के प्रकाश के सम्मुख उनके अज्ञान का एकदम नाश होता है। इसी लिये कहा जाता है, सत्य की ही जय होती है और झूठ की नहीं। ऋषि दयानन्द जी के सम्मुख भी सदैव यही बोध चिन्ह (Motto) रहता था। उसकी सच्चाई की विजय हुई। सब प्रकार के वैर विरोध व जानलेवा आक्रमणों के होते हुए भी ऋषि दयानन्द का झण्डा बहुत सफलता से गाड़ा गया।

महमूद ने कई आक्रमण किये । मूर्तियों को तोड़ा। मन्दिरों को ध्वस्त किया। पुजारियों को लूटपाट व अत्याचार से आतंकित किया। मूर्तिपूजा फिर भी पुजारियों के हृदयों में अधिक-अधिक घर करती गई। यह महर्षि की सच्चाई ही थी जिसके प्रभाव ने पुजारियों के दिलों से पाषाण पूजा को निकाला और मूर्तिपूजा का ऐसा उन्मूलन किया कि उन्होंने अपने ही हाथों से प्रसन्नतापूर्वक मूर्तियों को नदियों में बहाकर अपने मन का बोझा उतार फेंका।

इस प्रकार से बड़े-बड़े विद्वानों, धनवानों, राजों व विरोधियों को अपनी सच्चाई के सामने झुका कर तथा असत्य को नीचा दिखा देना उसी दैवी शक्ति का प्रकाश था जो प्रतिपल–सदा से असुरी दल का विनाश करती आई है और आगे भी करेगी।

## १. व्यङ्कट शास्त्री से शास्त्रार्थ

मेला पुष्कर में स्वामी जी ने मूर्तिपूजा का खण्डन किया तो ब्राह्मण झगड़ा करने लगे परन्तु विद्या में तो कोई सामना न कर सका अन्ततः व्यङ्कट शास्त्री के पास पहुँचे। पहले तो शास्त्री जी ने स्वामी को बुलाया फिर कहा, "मैं स्वयं ब्रह्मा-मन्दिर में आकर शास्त्रार्थ करूँगा। जब वह नहीं आया तो स्वामी जी स्वयं पहुँचे। तीन सौ ब्राह्मण थे।

भागवत विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। बहुत विचार के पश्चात् शास्त्री जी ने अपनी भूल स्वीकार की और कहा "स्वामी जी की विद्या अत्यन्त प्रबल है।" उसके पश्चात् शास्त्री जी ने अपने गुरु से स्वामी जी को मिलवाया। वार्तालाप होने पर गुरु शिष्य दोनों ने लोगों को यह बताया कि स्वामी जी जो कुछ कहते हैं वह सत्य है। व्यर्थ का हठ न करें। व्यङ्कट जी पर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने यह वचन दिया कि भविष्य में वह शास्त्रार्थों में स्वामी जी के पास पहुँचा करेंगे।[१]

## २. महन्त नगर छोड़कर भाग गया

अजमेर में द्वार के बाहर राम स्नेही लोगों का गुरु रहता था। स्वामी जी को पता चला कि वह विद्वान् है। उसे शास्त्रार्थ करने का सन्देश भेजा परन्तु उत्तर मिला कि हम नहीं कर सकते। कारण पूछा तो कहा कि हम किसी के डेरे पर नहीं जाते और यहाँ आयें तो हम गद्दी से उठकर किसी का सम्मान नहीं करते।

स्वामी जी ने कहा, "हम न गद्दी माँगें और न सन्मान। हमें शास्त्रार्थ चाहिये।" उसने कहला भेजा कि हम तो राम-राम करते

१. यह घटना सन् १८६६ की है। 'जिज्ञासु'

हैं कुछ शास्त्रार्थ नहीं जाने। इस पर स्वामी जी ने राम नाम तथा भागवत पर कई आक्षेप करते हुए एक पत्र भेजा और उत्तर माँगा। आपने कहा कि कल उत्तर देंगे। परन्तु उत्तर तो क्या देना था अगले दिन प्रातःकाल ही अपना सामान बाँधकर नगर से भाग गये। आप शाहपुरा की गद्दी के सबसे बड़े महन्त थे।[१]

## ३. टीकाराम ने मन्दिर की पूजा छोड़ दी

स्वामी जी रामघाट पधारे तो उन्हें कर्णवास के टीकाराम मिले। स्वामी जी के प्रश्न करने पर बताया कि मैं ब्राह्मण हूँ। फिर प्रश्न हुआ तो कहा कि सन्ध्या गायत्री से ब्राह्मण होता है। फिर स्वामी जी ने पूछा, "तू क्या सन्ध्या आदि जानता है?" बोला, "नहीं, हाँ गायत्री तो कण्ठस्थ है।" जब सुनाने को कहा तो बोला, "गुरु ने सुनाने का निषेध कर रखा है। मैं सुना नहीं सकता।" स्वामी जी बोले, "संन्यासी ब्राह्मण का भी गुरु होता है। हमारे सामने निःसंकोच सुना दे।"

तब टीकाराम ने गायत्री मन्त्र सुना दिया। स्वामी जी उसके उच्चारण से अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसे सन्ध्या करने के लिये उत्साहित किया। उसे सन्ध्या लिखकर दे दी। सिद्धान्त कौमुदी पर बात करते हुए जब टीकाराम व्याकरण में सर्वथा रह गया तो स्वामी जी का शिष्य बन गया। सकल संशय निवारण करके कर्णवास आया। सब ठाकुरों को एकत्र करके कह दिया कि हमें रामघाट में एक बहुत बड़े विद्वान् महात्मा मिले हैं जिनसे निश्चय हो गया कि मूर्तिपूजा वेद शास्त्र में नहीं है। पुराण, कण्ठी व तिलक आदि मिथ्या पाखण्ड है और तीनों वर्णों की एक ही गायत्री है अतः हम आपके मन्दिर की पूजा छोड़ते हैं।

आप लोग भी इस तजकर यज्ञोपवीत धारण करके वैदिक धर्म स्वीकार करें तो अच्छा अन्यथ आपकी इच्छा है। मन्दिर में और पुजारी रख लीजिये।

---

१. यह घटना भी १८६६ की है। 'जिज्ञासु'

## ४. सत्य का ग्रहण कर लेना ही पाण्डित्य है

अनूप शहर में प्रसिद्ध पं० अम्बादत्त को लोगों ने मूर्तिपूजा विषय पर शास्त्रार्थ करने के लिये प्रेरित किया। वृद्ध पण्डित हाँफने लगा। श्वास चढ़ गया। स्वामी जी ने कहा, "मौन रहें। मैंने जान लिया यहाँ तेरे सदृश और कोई पण्डित नहीं है। मुझे तो अभ्यास है और तुम वृद्ध हो।"

मूर्तिपूजा विषय पर कहा, "महादेव अपनी रक्षा तो करते नहीं फिर इनकी पूजा से क्या लाभ?" ये बातें संस्कृत में हुईं। अन्त में अम्बादत्त ने स्वीकार किया कि मूर्तिपूजा आदि वेद विरुद्ध हैं। सत्य के ग्रहण करने की यह रुचि देखकर स्वामी जी ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा सचमुच यह पण्डित है।[१]

## ५. हमारी तो स्वामी जी ने अविद्या काट दी

राम घाट पर खेमकरण जी ब्रह्मचारी का स्वामी जी से मेल हुआ। यह कट्टर मूर्तिपूजक थे और एक साथ कितने ही देवताओं की मूर्तियाँ रखते व पूजते थे। बाहर जाते तो सारी पूजा सामग्री घोड़े पर लाद कर ले जाते। १५ सेर की नर्वदेश्वर, सालिगराम की, चार गणेश गोमति चक्र टेढ़ी टाँग वाले की एक-एक अर्थात् सब मिलाकर आठ मूर्तियाँ थीं। पन्द्रह से बयालीस वर्ष की आयु पर्यन्त जी भर कर पूजा की परन्तु अब सत्संग से अंधविश्वास जाता रहा। गले, मस्तक तथा हाथ पर रुद्राक्ष की माला पहनते थे। स्वामी जी कहते, "सर्प है।"

खेमकरण, "नहीं महाराज, माला।"

स्वामी जी महाराज कहते, "अरे मूर्ख यह असत्य है। मिथ्या है।" इस प्रकार डावाँडोल हो गया। कभी धारण करता तो कभी रख देता। इतने में कृष्ण इन्द्र उसे कहने लगा "तू नास्तिक है जो मूर्तिपूजा छोड़ता है।" वह कृष्ण इन्द्र का स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ देख चुका था। जिसमें कृष्ण इन्द्र के होश उड़ गये थे। इस लिये उसकी बात पर खेमकरण को जोश आ गया। उसने

१. यह सन् १९६७ की घटना है।

सब पूजा व माला त्याग दी तथा सदा स्वामी जी महाराज को धन्यवाद दिया करता था कि हमारी तो उन्होंने अविद्या काट दी।

## ६. स्वामी जी से भोग लगवा कर ही उठूँगा

कर्णवास में कई स्थानों के लोग पं० हीरावल्लभ को शास्त्रार्थ के लिये लाय। उस पण्डित सभा में एक सुन्दर सिंहासन बनाया गया। उस पर बालमुकन्द, गोमती चक्र, सलिगराम आदि की प्रतिमायें रखकर प्रतिज्ञा की कि यहाँ से तब उठूँगा जब स्वामी जी के हाथ से इन्हें भोग लगवा दूँगा। प्रथम दिन धाराप्रवाह संस्कृत भाषण में निकल गया। छह दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। एक दिन तो नौ घण्टे तक निरन्तर शास्त्रार्थ होता रहा। हीरावल्लभ को ऋग्वेद तथा यजुर्वेद दोनों संहितायें कण्ठाग्र थीं। व्याकरण का भी मूर्धन्य विद्वान् था। पण्डित बालकेशर आदि दूर-दूर के विद्वान् पण्डित उसकी सहायता के लिये वहां आये हुए थे। एक सप्ताह तक इन सबने एड़ी चोटी तक की सारी शक्ति लगा कर देख लिया। कुछ भी न बन सका। कोई दाल न गली।

तब पं० हीरावल्लभ ने खड़े होकर संस्कृत में बोलते हुए स्वामी जी महाराज की विद्या की भूरि-भूरि प्रशंसा की। बहुत ऊँची आवाज में कहा, "वास्तव में स्वामी जी का कथन सत्य व प्रामाणिक है और मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध है।" केवल इतना ही नहीं अपितु वह सिंहासन जिस पर सब अटरा-पटरा रखा हुआ था उठाकर सब मूर्तियाँ गंगा में फेंक दीं तथा उसी सिंहासन पर वेद भगवान् को प्रतिष्ठित किया।

स्वामी जी महाराज ने उसके सत्य के ग्रहण करने असत्य के परित्याग करने की बहुत प्रशंसा की। इसका प्रभाव इतना व्यापक व गहरा पड़ा कि एक के पश्चात् दूसरे-कई पण्डितों ने मूर्तियाँ गंगा में फेंक दीं। जब अम्बादत्त ने नन्द किशोर से स्वामी जी की विद्या के विषय में पूछा तो उसने जोश में आकर दोनों हाथ भूमि पर मारते हुए कहा कि भाई! क्या कहूँ? वे तो मानो

बृहस्पति के अवतार हैं।[1]

## ७. सालिग्राम की मूर्तियाँ गंगा में

सोरों के नारायण पण्डित जी श्री स्वामी जी के विरुद्ध थे। वह भी फिर वैदिक धर्मी बन गये। अपने पं० अंगदराम जी से जाकर स्वामी जी की प्रशंसा करने लगे। कहा, "कोई उनसे शास्त्रार्थ नहीं कर सकता।" अंगदराम उन दिनों न्याय तथा व्याकरण का एक बेजोड़ विद्वान् समझा जाता था। उनकी बड़ी धाक थी। उसका नाम सुनकर ही पण्डित लोग घबरा जाते थे।

वह कभी किसी समय दण्डी विरजानन्द जी महाराज के पास व्याकरण पढ़ता रहा था अत: वह बड़े अभिमान से आया। जो युक्तियाँ स्वामी जी ने दीं उनसे निरुत्तर हो गया। फिर भागवत के विषय में चर्चा चली। स्वामी जी ने अत्यन्त विद्वत्ता से उसकी अशुद्धियाँ दिखाईं तो पं० अंगदराम अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

स्वामी जी की विद्वत्ता पर तो मानो वह मोहित ही हो गया। कहा, "महाराज! आपकी बातों को कहाँ तक श्रवण करूँ? सब सत्य हैं।" पूरी संतुष्टि करके पं० अंगदराम जी ने भी सबके सामने शालिग्राम की मूर्ति गंगा में बहा दी। भागवत आदि की कथा करना भी कतई छोड़ दिया। अब भागवत् का बहुत तिरस्कार करने लगे। इसके पश्चात् पं० बलदेव गिरि तथा अंगद जी के सगे सम्बन्धियों ने भी अपनी पूजा की प्रतिमायें गंगा में प्रवाहित कर दीं।[2]

## ८. झूठ ने तुम्हारे मुँह पर ताला लगा दिया

सोरों में संस्कृत के एक बड़े विद्वान् स्वामी चिद्धनानन्द जी मूर्तिपूजा सिद्ध करने के लिये आये। उनका दावा सुनते ही स्वामी जी महाराज ने उन्हें लिखा कि आप आयें अथवा हम आते हैं। वह दूर से ही बातें बनाता रहा। न तो स्वयं आया तथा न ही

१. यह शास्त्रार्थ पौष मास सम्वत् १९२४ (सन् १८६७ ई०) में हुआ था। 'जिज्ञासु'

२. यह घटना अप्रैल-मई सन् १९६८ की है। 'जिज्ञासु'

स्वामी जी को आने को कहा।

चार घड़ी दिन रहे वह गंगा की धार की ओर गया। स्वामी जी को पता चला तो आप भी चल दिये। एक मील दूर उसे श्मशान के निकट जा पकड़ा। दोनों बैठ गये। स्वामी जी ने पूछा, "बोलो! वह मूर्तिपूजा सिद्धि का मन्त्र कौन सा है।" वह मौन हो गया। घण्टा भर वहीं बैठे रहे।

फिर स्वामी जी महाराज ने कहा, "असत्य भाषण ने तुम्हारे मुँह पर ताला लगा दिया है। यदि तुम्हारा पक्ष सत्य है तो फिर बोलते क्यों नहीं?" फिर कहा, "अब तो मौन होकर बैठ गया है। मूर्तिपूजा का समाधान कर।"[१]

## ९. स्वामी जी ने विश्रान्त को कील रखा है

फ़र्रुखाबाद में कई शास्त्रार्थ हुये। सब स्थानीय पण्डित रह गये तो मेरठ से श्री गोपाल को लाया गया। वह आये तो बहुत धूम धड़ाके से परन्तु थोड़ी ही देर बातें करते समय उसकी सब योजना मिट्टी में मिल गई। फिर उसने एक नई चाल चली। वह काशी गया और वहाँ से पहले का लिखा हुआ एक व्यवस्था पत्र ले आया। धन व्यय करके पण्डितों से हस्ताक्षर करवा लिये। लौटकर बहुत डींगें मारने लगा। ज्वाला प्रसाद शाक्त मत के मानने वाले डाक मुंशी को जो एक जाना माना मद्यप था अपने साथ मिलाया। उसने शास्त्रार्थ के विज्ञापन लगवा दिये। व्यवस्था पत्र की प्रतिलिपि स्वामी जी को पं० गोपालराव ने करके ला दी जिसे पढ़कर स्वामी जी मुस्करा दिये और कहा, "मैंने काशी वालों की योग्यता देख रखी है। ऐसा ही वहाँ शास्त्रार्थ भी होगा।"

श्री गोपाल ने स्वामी जी के डेरे के समीप टोका घाट के मैदान में इस व्यवस्था पत्र को गाड़ दिया। एक बाँस पर झण्डा

---

१. सत्यासत्य का निर्णय करने के लिये ऋषि दयानन्द के अदम्य उत्साह को दर्शाने वाली ऐसे-ऐसे घटनायें पढ़ सुनकर व्यक्ति दंग रह जाता है। उनकी दृढ़ता व सत्यनिष्ठा का इन घटनाओं से पता चलता है। 'जिज्ञासु'

चढ़ाकर गाड़ दिया जिस पर धर्म ध्वजा शब्द लिख दिया। सहस्रों व्यक्तियों का मेला लग गया। वह स्वामी जी को सन्देश भेजने लगा कि शास्त्रार्थ के लिये आयें। पिछले वार्तालाप का प्रमाण देकर स्वामी जी ने कहा, "पुलिंग स्त्रीलिंग का तो इसे ज्ञान नहीं। वह शास्त्रार्थ क्या करेगा। उसकी इच्छा मात्र बखेड़ा करने की है।"

श्री गोपाल ने रेत में एक और बाँस गाड़ दिया और कहा, "इस पर सब लोग जल चढ़ायें।" लोग अंधाधुंध लुटिया भर भर कर डालते गये तथा स्वामी जी यह खेल देखते रहे। एक दो सेठों ने स्वामी जी से कहा कि आप बखेड़े से न डरें। हम व्यवस्था करेंगे।" स्वामी जी ने कहा, "पहले तो ऐसी भीड़ में व्यवस्था कठिन है और हो तो भी वास्तव में शास्त्रार्थ करना है तो पण्डित लोग ऊपर क्यों न आ जायें।"

इसी प्रकार एक चौबा सन्देश लाया परन्तु स्वामी जी ने जब उससे एक दो बातें कहीं तो वह चकित रहकर वहीं खड़ा रह गया। अन्त में श्री गोपाल को लोगों ने कहा, "ऊपर चलकर शास्त्रार्थ करें। नीचे शोर क्यों कर रहे हो?"

वह बोला, "स्वामी जी ने विश्रान्त (जहाँ डेरा था) कील रखा है। हम ऊपर पड़ गये तो वह जीतेंगे और वह नीचे आवेंगे तो हम जीतेंगे।" इस प्रकार से वह न आया। नगर का कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति उसके साथ नहीं था। स्वामी जी भी चार बजे बारहदरी आ बैठे। इतने में कोलैक्टर महोदय ने शोर शराबे का समाचार सुनकर कोतवाल को भेजा जिसने एक चपड़ासी को भेजकर स्वामी जी को बाहर बुलाया परन्तु वे न आये। ला० जगन्नाथ सेठ न कहा, "वे किसी के नौकर नहीं हैं, न किसी के पास जाते हैं।"

तब कोतवाल ने भीतर आकर कहा, "बाबा जी! यह क्या बखेड़ा है?"

स्वामी जी ने कहा, "तुम राज आज्ञा से ऐसा कहते हो अथवा वैसा ही। हम अपने स्थान पर हैं। कोई कुछ कुवाक्य कहे तो भी सहते हैं। हाँ! बुरा कहने से किसी को रोक नहीं सकते।"

प्रतिष्ठित सज्जनों ने भी उसे वस्तु स्थिति बताई तो वह बोला, "शरारती दुष्ट लोग व्यर्थ में शरारत करते हैं। बाबाजी को चाहिये कि किसी को आने न दें।"

स्वामी जी ने कहा, "राजा का धर्म है कि व्यवस्था करे व सबकी सुरक्षा करे।" उसने वहाँ पहरे के लिये दो सिपाही नियुक्त कर दिये। फिर श्रीगोपाल को बुलाया। वह तो बहुत भयभीत हुआ। सेठ वंशीलाल जी को कहा, "मेरे पर कोई बात बनी तो मैं जान दे दूँगा।

इस पर ला० जगन्नाथ जी ने कोतवाल को समझाकर स्थिति को शांत कर दिया। श्रीगोपाल फ़र्रुखाबाद से चला गया।[१]

## १०. हलधर ओझा से शास्त्रार्थ

जब श्री गोपाल की व्यवस्था मिथ्या निष्फल सिद्ध हुई तो कुछ लोग पं० हलधर ओझा को कानपुर से बुला लाये। यह बहुत प्रकाण्ड विद्वान् था। यह काशी से कानपुर में एक मन्दिर की प्रतिष्ठा के लिये आमन्त्रित था। लोगों ने यह प्रचारित कर दिया कि कोई शर्त लगावे तो स्वामी जी से हलधर का शास्त्रार्थ करवायें। ला० जगन्नाथ ने झटपट ला० देवी दास के पास ढाई सहस्र रुपये भेजकर कहा कि इतनी ही राशि इसमें मिलाकर किसी सेठ के पास रख दें। शास्त्रार्थ में जो भी विजयी हो उसे यह राशि दे दी जावे।

उन्होंने कहा "रुपये की तो कोई बात नहीं। मैंने तो केवल वार्तालाप के लिये हलधर को बुलवाया है। वह कानपुर तो आये ही थे।"

इसके पश्चात् कई व्यक्ति हलधर को लेकर एक दिन श्री महाराज के पास आये। मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। हलधर तो तान्त्रिक था। वह मांस-मदिरा का सेवन करने वाला

---

१. यह घटना सम्वत् १९२५ (सन् १८६८ ई०) की है। स्वामी सत्यानन्द जी ने प्रतिपक्षी का नाम हरिगोपाल लिखा है। हमें पं० लक्ष्मण जी का दिया नाम श्री गोपाल ही ठीक जँचा है। 'जिज्ञासु'

था। अतः वह इनकी सिद्धि में ही जुट गया। स्वामी जी ने बारम्बार उसे कहा कि प्रकरण के बाहर मत जायें। तब वह प्रकरण शब्द पर विवाद करने लग गया। फिर समर्थ शब्द पर शास्त्रार्थ छिड़ गया। समर्थ व असमर्थ कौन किसे कहते हैं? स्वामी जी ने महाभाष्य का वाक्य बोलकर इसका उत्तर दिया। हलधर ने कहा, "यह महाभाष्य में है ही नहीं।"

स्वामी जी ने अविलम्ब पुस्तक मँगवाकर यह प्रमाण दिखा दिया। तब निरुत्तर होकर बोला, "महाभाष्यकार भी पण्डित थे और मैं भी पण्डित हूँ। मैं क्या उससे कम हूँ?"

स्वामी जी ने कहा, "तुम उसके सदृश भी नहीं हो। यदि हो तो बताओ कलम संज्ञा किस की है?"

हलधर उत्तर न दे पाया। हलधर की विद्वत्ता का सबको पता चल गया। एक बजे रात्रि तक व्याकरण पर वार्तालाप होता रहा। अन्ततः यह निश्च हुआ कि 'समर्थः पदविधिः' वाला सूत्र यदि सर्वत्र लगे तो हलधर पराजित माना जावेगा और यदि एक ही स्थान पर लगे तो स्वामी जी। अगले दिन प्रातः ही स्वामी जी के शुभेच्छु आकर उन्हें कहने लगे कि रात्रि सब पण्डित कहते थे कि स्वामी जी ने बड़ा हठ किया। यह सूत्र सर्वत्र नहीं लगता। अतः आप यहीं तक ही रहने दें। अभी कुछ नहीं बिगड़ा। स्वामी जी ने मणिलाल को सम्बोधित करके कहा, "यदि तू उसे न लावे तो मुझे गोवध का पाप लगे। उसे भी यही पाप लगे यदि वह न आये।"

अगले दिन रात्रि बहुत अच्छे ढंग से शास्त्रार्थ हुआ।

स्वामी जी ने कल वाला आश्वासन (प्रतिज्ञा) मनवा दी। महाभाष्य निकाल कर उस सूत्र को सर्वत्र लगा कर दिखा दिया। पण्डित लोग और बात करने लगे परन्तु स्वामी जी ने कहा, "पहले जिस विषय पर शास्त्रार्थ चल रहा है, उसकी बात करो कि कौन हारा?"

अब सब मौन रहे। ला० जगन्नाथ ने कहा, "जो बात सच्च

है वह कह दीजिये।

तब सबने कहा, "कल के निर्णय के अनुसार तो आज हलधर की बात मिथ्या सिद्ध हुई।" यह सुनते ही हलधर मूर्छित होकर मारे शोक के गिरने लगा। उसके साथियों ने उसे सम्भाला और उसे उठाकर मकान पर ले गये।[१]

## ११. शिवलिङ्ग की बजाय पाठशाला स्थापित करें

फर्रुखाबाद में ला० वंशीलाल जी सेठ एक मन्दिर बनावाकर उसमें शिवलिंग स्थापित करना चाहते थे परन्तु स्वामी जी का खण्डन सुनकर तथा श्री गोपाल व हलधर ओझा की दुर्दशा देखकर दुविधा में पड़ गये। जब काशी वाली व्यवस्था का श्री स्वामी जी ने उत्तर दिया तब वह भ्रमित होने से बच गये। अपने गुरु पीताम्बरदास को इसके बारे कतई निर्णय लेने के लिए काशी भेजा। पूरी जाँच करके उन्होंने आकर बताया कि सब कहते हैं कि मूर्तिपूजा तो बस लोकचाल है। वेद में इसका विधान नहीं है। लाला जी गुरु सहित शंका-निवारण के लिये स्वामी जी के पास आये। जब पूरी सन्तुष्टि हो गई तो पाषाण पूजा का परित्याग कर दिया। एक दिन पुजारी ने आकर कहा, "ठाकुर जी के वस्त्र नहीं है।" सेठ जी ने कहा, "चले जाओ, हमारे ठाकुर जी को जाड़ा नहीं लगता।" इसके अतिरिक्त जहाँ शिवलिङ्ग स्थापित करना था वहाँ स्वामी जी की आज्ञानुसार धूमधाम से वैदिक पाठशाला स्थापित की गई।

## १२. कट्टर मूर्तिपूजकों के दिल बदल गये

कानपुर में ब्रह्मानन्द बहुत विरोध करता रहा। यह लोगों को उपदेश सुनने से रोकता था। यही प्रचार करता कि दयानन्द नास्तिक है। यह ईसाई है। अंग्रेज़ों ने हिन्दुओं को क्रिश्चन बनाने के लिये इसे नियुक्त किया है। कुछ पण्डितों को साथ लेकर स्वामी जी महाराज के पास गया। गाली व बकवाद ही जानता

१. यह सम्वत् १९२६ (१८६९ ई०) की घटना है। 'जिज्ञासु'

था, शास्त्रार्थ तो कर न सका।

स्वामीजी ने कहा, "तू मूर्ख है। विद्वान् होता तो शास्त्रार्थ करता।" फिर पुराने कानपुर के ब्राह्मणों (जिन्होंने उपदेश सुना) को कहने लगा, "प्रायश्चित्त करो।" २०-२५ व्यक्तियों को गंगा में स्नान करवाकर खड़ा करके यज्ञोपवीत बदले। गायत्री जप करवा के पंच गव्य पिलाया और कहा कि तुम लोगों ने देवताओं की निन्दा सुनी है। उसका प्रायश्चित्त है। भविष्य में स्वामी जी का उपदेश सुनने नहीं जाना। जो दयानन्द के निकट जायेगा वह त्यागने योग्य होगा।

स्वामी जी का कथन था कि इन निरर्थक बातों से क्या सिद्धि होगी? विद्या बल है तो सामने आ परन्तु कौन आता? वहाँ वे कई औरों को शास्त्रार्थ करने के लिये प्रेरित करता रहा परन्तु कोई भी उद्यत न हुआ। कानपुर के श्रीमन्त प्रयाग नारायण तथा गुरुप्रसाद जी स्वामी जी से मिले। आपने उन्हें यह उपदेश दिया कि आपने कैलाश व बैकुण्ठ के जो दो मन्दिर बनवाये हैं उन पर लाखों रुपये क्यों व्यर्थ गँवाये। विद्या प्रचार में लगाते अथवा अनाथों की रक्षा करते तो अच्छा होता। ये धनवान लोग चाटुकारों की बातें सुनने के अभ्यस्त थे। अतः इस उपदेश को सुनकर रुष्ट हो गये। दोनों ने श्री लक्ष्मण शास्त्री को बिठूर से बुलवाया। उधर से ब्रह्मानन्द आदि ने हलधर ओझा को तैयार किया। सबने एक मत होकर शास्त्रार्थ के लिये तैयारी की। सहायक कोलेक्टर श्री थेन को मध्यस्थ नियत किया गया। आप संस्कृत के विद्वान् थे। सब प्रतिष्ठित राज्य अधिकारी व श्रीमन्त लोग शास्त्रार्थ में उपस्थित थे। २५००० तक की उपस्थिति थी। वृक्षों, घाटों, छतों, नौकाओं व भूमि पर मनुष्य ही मनुष्य दिखाई देते थे।

पुलिस का प्रबंध भी बहुत अच्छा था। वैसे तो कोई चार सौ ब्राह्मण होंगे परन्तु बोलने वाले हलधर ओझा थे। उसने पहले तो स्वामी जी के विज्ञापन की चर्चा छेड़ी और कहा कि इसमें अशुद्धि है। स्वामीजी ने कहा, ऐसी बातें तो पाठशालाओं की हैं

अतः कल मेरे पास आना। सन्तुष्टि करवा दूँगा।[१] इस समय मूर्तिपूजा विषय पर बात करो जिसके लिये यह इतनी भीड़ एकत्र है।

हलधर ने महाभारत का श्लोक पढ़ा और कहा, "देखो भील ने द्रोणाचार्य की मूर्ति सामने रखकर धनुष विद्या सीखी।" स्वामी जी ने कहा, "इससे यह तात्पर्य है कि उसने मूर्ति का निशाना धनुष विद्या के अभ्यास के लिये किया जैसे आजकाल चाँद मारी करते हैं और यदि कोई अज्ञानी पुरुष ऐसी पूजा भी करे तो वह प्रमाण थोड़ा है। वह न तो ऋषि मुनि था और न उसके पास विद्या थी। आप वेद से कोई प्रमाण दें।"

यह उत्तर सुनकर ओझा कुछ समय के लिये तो मौन रहा परन्तु फिर उसने नई शैली से एक प्रश्न किया कि यदि वेद में मूर्तिपूजा का विधान नहीं तो निषेध कहाँ है? स्वामी जी ने कहा, "कोई स्वामी सेवक को कहे कि पश्चिम को चला जा तो शेष तीनों दिशाओं का निषेध अपने आप ही समझा जाता है। अतः जो उचित है वेद ने आज्ञा दी और जिसकी आज्ञा नहीं दी, वह निषेध है।"

इसके पश्चात् थेन महोदय ने स्वामी जी से एक दो बातें पूछीं फिर पूर्णतया सन्तुष्ट होकर छड़ी व टोपी उठाई और कहा, ठीक बात है। अभिवादन करके चल पड़े।

इस पर प्रयाग नारायण ने आठ आने के पैसे हलधर के सिर से लुटाय और शोर मचा दिया हलधर जीते। सबने श्री गंगा जी की जय बुलाई। हलधर को गाड़ी में बिठाकर ले गये। इस प्रकार लोगों पर सत्य का जो प्रभाव पड़ा था उसे रोकने का भारी प्रयास

---

१. पौराणिक पण्डितों का यह बहुत बड़ा दोष रहा है कि ये शास्त्रार्थ के विषय से हटकर सदैव संस्कृत व्याकरण की अपनी विद्वत्ता को लेकर ऋषि दयानन्द व आर्य विद्वानों की अशुद्धियाँ ही निकाल कर व्यर्थ विवाद करते रहे हैं। 'जिज्ञासु'

किया गया।

गुरु प्रसाद ने तो अपने किरायदार 'शोलाय तूर' पत्रिका के सम्पादक को भी गाँठा[१] और झूठ लिखने के लिये जो भी दण्ड (Fine) हो उसके चुकाने का दायित्व स्वयं लिया। बहुत बड़ा लेख लिखवाया गया। उसमें वास्तविकता के विपरीत हलधर की जीत प्रकाशित करवाई गई। विरोधियों का विचार था कि ऐसी कुटिल कुचाल से वे सफल होंगे परन्तु सत्य के प्रेमियों को इस मिथ्या लेख से बड़ा जोश आया। उन्होंने वह अंक स्वामी जी को दिखाया और कहा, "देखिये कैसे झूठ लिखा है।" उन्होंने कहा लिखने दो। हमें इससे हर्ष व शोक नहीं है। शास्त्रार्थ में हार-जीत का मानना मूर्खता का काम है।" परन्तु वे लोग बोले कि हम तो यह सह नहीं सकते। लोग कहते हैं कि तुम्हारे गुरु हार गये। स्वामी जी ने कहा, "जो हो सके करो परन्तु ऐसा कुछ न करना कि मुझे कहीं आना जाना पड़े।" इस पर वे लोग पं० हृदय नारायण जी मुनसिफ के पास आये। उन्होंने कहा, "मेरे मत में हम सब सदर आला के पास चलें।" परन्तु सदर आला ने कहा, "थेन महोदय के पास चलिये। जो कहें वही ठीक।" इस प्रकार वे सब वहीं गये। जब थेन साहेब को वह लेख पढ़कर सुनाया तो वह एकदम बोले, "नहीं, नहीं, उस दिन साधु जीता।" यह बोला कि देखिये पत्रिका में यह मिथ्या समाचार छपा है।

साहेब ने पूछा, "तुम क्या माँगता है?"

हृदय नारायण जी ने कहा, "जो आपने देखा व ठीक समझा उसको हमें लिखित रूप में दे दीजिये।" साहेब ने तत्काल एक पत्र लिख दिया जिसका आशय यह था कि शास्त्रार्थ में स्वामी दयानन्द फकीर जीता था। उसकी युक्तियाँ वेदानुसार थीं और

१. इस शोलाय तूर पत्रिका में श्री स्वामी जी की प्रशंसा के भी समाचार छपते रहे। श्री कन्हैयालाल अलखधारी ने अपने 'नीति प्रकाश' पत्र में ऐसे समाचार उद्धृत किये। 'जिज्ञासु'

मैंने उसके पक्ष में उस दिन निर्णय दिया था।[१]

यह पत्र वास्तविक घटनाओं के साथ 'शोलाय तूर में प्रकाशित हुआ जिससे सब भ्रम भञ्जन हो गया यद्यपि सहस्रों लोग इधर उधर से झूठी बातें फैला रहे थे परन्तु हृदयों में तो सच्चाई घर कर चुकी थी। इसका प्रमाण इससे बढ़कर और क्या हो सकता था कि **शोलाय तूर में थेन साहेब का पत्र प्रकाशित हुआ** तथा यथार्थ घटनाओं वाला लेख अभी प्रकाशित भी नहीं हुआ था कि लोगों ने शिवलिङ्ग की मूर्तियाँ उठा उठा कर गंगा में फेंकनी आरम्भ कर दीं। नगर भर बड़ा शोर मच गया। यहाँ तक कि हलधर ओझा तथा उसके संगी साथी दीवारों पर विज्ञापन लगाने लगे कि लोगो! मूर्तियों को गंगा में निरादर से मत फेंकें। इससे पाप लगेगा। जिसे मूर्ति को फेंकना ही हो वह प्रयाग नारायण जी के मन्दिर में ही पहुँचा दें। यदि ऐसा भी न कर सकें तो फिर हमें केवल सूचना दे देवें। हम स्वयं उठवा लाया करेंगे।

यह विज्ञापन दीवारों पर भी चिपकाय गये। पत्रों में प्रकाशित हुए तथा वह लेख जो 'शोलाय तूर' में छपा सबने स्वामी दयानन्द की असाधारण सफलता की धाक सबके हृदयों में बिठला दी। कानपुर में बड़े-बड़े कट्टर मूर्तिपूजकों के दिल हिल गये। जिन्होंने सारी आयु मूर्ति पूजा करते-करते बिता दी और जो पहले स्वामी जी पर ईंटें चलाते थे, वे भी इस शास्त्रार्थ के पश्चात् पाषाण पूजा को सर्वथा परित्याग कर बैठे।

## १३. जो भीतर छुपा है उसे बुला दो

प्रयाग में शिवसहाय नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसने

१. श्री थेन का मूल पत्र यह था–'Gentlemen—At the time in question I decided in favour of Dayanand Saraswati Fakir and believe his arguements are in accordance with the Vedas. I think he won the day. If you wish it, I will give my reasons for my decision in a few days.'
Yours faithfully,
W.Thaine

Cawnpur 7-8-1869

वाल्मीकि रामायण की एक टीका लिखी थी जिसके अर्थों का दोष स्वामी जी ने बतलाया तो वह शास्त्रार्थ करने लगा परन्तु परास्त होकर उठा तथा गंगा के तीर-तीर काशी को चल दिया। स्वामी जी भी उसके पीछे-पीछे चल पड़े। आप तो रामनगर पहुँचे गये और शिवसहाय काशी नरेश के राज भवन में चला गया[१] स्वामी जी राजा की वाटिका में मिट्टी का एक ढेला सिर के नीचे रखकर के सो गये। प्रातः समय जो लोग दर्शन करने आय उनके सामने शिव सहाय की टीका का खण्डन किया। उस मकान के बाहर (राज भवन के) खड़े रहे और जो कोई पूछता उसे यही कहते कि जो भीतर छुपा है उसको बुलादो अर्थात् शिवसहाय को बाहर निकालो।

वह विचारा लज्जित हुआ और राजा से अनुमति लेकर अपने घर चला गया।

## १४. पौराणिक दुर्ग की नींव हिल गई

भारत की धार्मिक राजधानी काशी है।[२] संस्कृत का यही केन्द्र है। हिन्दू लोग इसकी विचित्र महिमा का वर्णन किया करते हैं। काशी में मरने से मुक्ति मानते हैं।[३] इसी लिये विक्रमादित्य के समय से मनुष्य काशी करवत पर अपनी गर्दनें चढ़ाते रहे। शाहजहाँ ने इस क्रूर अंधविश्वास से लोगों को हटाया परन्तु उसकी एक पीढ़ी बाद ही यह करवत मानवीय रक्त चूसने लगा। परन्तु अन्ततः अंग्रेज़ सरकार ने अधिनियम बनाकर इस मानवीय गर्दनें काटने वाले करवत को सर्वथा बन्द कर दिया फिर भी

१. काशी नरेश का राजभवन राम नगर में ही स्थित है। 'जिज्ञासु'
२. अब तो काशी भारत का धार्मिक केन्द्र नहीं है। भगवानों की बाढ़ में यह केन्द्र बह चुका है। अब नये-नये मठ, मन्दिर, गुरुधाम व करोड़ों रुपये के मुकुट व सिंहासन वाले कई भगवान् व तीर्थ आगे निकल चुके हैं। हरिद्वार में ही वातानुकूलित नये-नये गुरुओं व बाबों के वैभवशाली आश्रम काशी से कहीं अधिक भक्तों को खींचते हैं। 'जिज्ञासु
३. यम नियम, सत्कर्म, जप, तप सब गौण हो गये। 'जिज्ञासु'

इसके होते हुए भी हिन्दुओं के हृदयों में काशी की प्रतिष्ठा यथापूर्व है।

मूर्तियों का आधिक्य तथा मन्दिरों की बहुलता का तो यहाँ कोई ठिकाना नहीं है। प्रत्येक गली कूचा तो क्या नालियों में भी शिवलिंग व शिवालय बन रहे हैं। जितने कङ्कर उतने शंकर की कहावत यहां प्रसिद्ध है। समझा जाता है कि स्वयं महादेव काशी का राजा तथा ढुण्डी राजा गणेश उसका कोतवाल तथा भैरों उसका देखभाल करने वाला है। इन सबसे बढ़कर धर्म के प्रत्येक विषय में व्यवस्था काशी से ही ली जाती है। इस अवस्था में पाषाण पूजा को जड़ से उखाड़ना तभी सम्भव था कि इस पौराणिक गढ़ को सर्वप्रथम जीता जाये। यही कारण था कि श्री स्वामी जी एक लम्बे समय से इस विचार के थे कि काशी जाकर असत्य मत का खण्डन करें। अत: इसी उद्देश्य को लेकर आप २२ अक्टूबर सन् १८६९ को श्री स्वामी जी यहाँ पधारे और पहले ही प्रबल आक्रमण में इस पौराणिक दुर्ग में एक भीषण भूकम्प सा पैदा कर दिया।

काशी नरेश हृदय से स्वामी जी की विद्वत्ता को मानते थे परन्तु राजा का भाई वैरागी था। वह रामलीला बनवाता था। पण्डितों को उसने कहा कि जैसे भी हो प्रतिमा पूजन को स्थापन कर दिखाओ। उधर से स्वामी जी ने राजा साहेब को कहलवा भेजा कि मूर्तिपूजा के विषय में आप अपनी सन्तुष्टि कर लें। पण्डित लोग आप भी मूर्तिपूजा के खण्डन से तंग आ रहे थे। इसका यह परिणाम निकला कि काशी में एक बड़े शास्त्रार्थ की तैयारी आरम्भ हो गई। पण्डितों ने कहा, और ग्रन्थ तो हमने देखा हैं परन्तु वेद से अब प्रमाण खोजने हैं। इस पर विचार करके पण्डितों को पन्द्रह दिन कर समय दिया गया। सब पण्डित लगे खोज करने। तेरह दिन के पश्चात् राजाराम इत्यादि पण्डितों ने चार पण्डितों को यह पता करने के लिए भेजा कि स्वामी जी किन-किन ग्रन्थों को प्रामाणिक मानते हैं। स्वामी जी ने कहा,

"ऐसी बातें शास्त्रार्थ के समय बता दी जावेंगी।" राजा साहेब द्वारा फिर यह प्रश्न पूछवाया गया।

तब स्वामी जी ने २१ ग्रन्थों के नाम लिखवाये। इस प्रकार काशी के पण्डित दो सप्ताह पर्यन्त निरन्तर तैयारी करते रहे। काशी नरेश उन्हें सब प्रकार की सामग्री व सुविधा देते रहे। वह यह समझते थे कि सम्भव है वेद से प्रमाण न मिले परन्तु पण्डितों का मोह प्यार उन्हें विवश करता था। स्वामी जी के विरुद्ध वे एक मत होकर आवाज उठाते थे तथा मन्दिरों पर लाखों रुपये राजा की ओर से व्यय हुये तथा सहस्रों की आजीविका इसी से चल रही थी। इसलिये राजा एक प्रकार से मूर्तिपूजा की सिद्धि का उत्तरदायी बन गया। इस लिये इस शास्त्रार्थ के लिये उन्होंने कोई कमी शेष न छोड़ी।

स्वामी जी अपने विद्याबल पर अडिग विश्वास रखते थे। उन्हें सत्य पर अटल विश्वास था अतः वे निश्चिन्त थे परन्तु कभी-कभी यह आशङ्का अवश्य होती थी कि कोई शरारत न हो जावे। यदि अनपढ़ लोगों ने हू हा हुल्लड़ कर दिया तो काम बिगड़ जावेगा। इसके लिये आपने कुछ विद्वानों से कहा कि साहस से कार्य करना आवश्यक है। वे यह जानते थे कि कई विद्वान् हृदय से मेरे पक्ष के हैं। इसलिये उन्हें कहा, "आपको पहले तो मूर्तिपूजा का खण्डन करना चाहिये परन्तु यदि न भी करें तो भी जो यथार्थ युक्तियों को न माने उसे समझा देवें।" ज्योति स्वरूप इत्यादि विद्वानों ने आश्वस्त किया कि जो कुछ सम्भव होगा, सहायता करेंगे। साधु जवाहरदास ने स्वामी जी से कहा, "ये लोग षड्दर्शनों के ज्ञाता बहुत विद्वान् हैं। आप इन सबसे कैसे शास्त्रार्थ करेंगे?"

स्वामी जी ने कहा, "यहाँ केवल बाल शास्त्री कुछ बात कर सकेगा शेष कोई भी वेद विद्या में कुशल नहीं। सबकी योग्यता मुझे फर्रुखाबाद में ही उस व्यवस्था से मिल गई थी जो श्री गोपाल यहाँ से ले गया था।"

जिस दिन शास्त्रार्थ होना था पण्डितों की ओर से शोर था कि विश्वनाथ ने चाहा तो आज दयानन्द का मुँह बन्द कर देंगे। बड़ी भीड़ हो रही थी। पं० बलदेव प्रसाद को सूचना मिली तो वह स्वामी जी के पास पहुँचे और कहा कि आज बहुत भीड़ भाड़ होगी। काशी शोहदों (लुच्चों) का नगर है। अत: हमें बहुत सन्देह है। स्वामी जी ने हँसकर कहा, "योगियों का निश्चित सिद्धान्त है कि सत्य का सूर्य अकेले ही अंधकार के मेघों पर विजय पाता है। जो पक्षपात तजकर ईश्वर की आज्ञानुकूल सत्य का पालन करता है उसको भय कहाँ? सत्य पुरुष डरकर सत्य को नहीं छुपाते। जान जावे तो जावे परन्तु ईश्वर की आज्ञा जो कि सत्य है, वह न जाये।

अरे बलदेव, चिन्ता क्या है? एक मैं हूँ। एक ईश्वर है तथा एक धर्म है और कौन है? देखी जायेगी उनकी यदि उनका आना होगा।"[१]

१६ नवम्बर १८६९ को शास्त्रार्थ हुआ। यह दिन सच्चमुच ही काशी के लिये विचित्र ही था। एक ओर तो काशी के समस्त भैरव आदि रक्षक तथा उनके साथ ३३ करोड़ देवताओं की विशाल सेना। न केवल यही कल्पित देवी देवता प्रत्युत बीस पचीस सहस्र जीवित देवता ब्राह्मण शास्त्र तथा शस्त्र दोनों प्रकार से उनकी सहायता को तैयार थे। काशी नरेश अपनी सारी शक्ति से प्रचलित परम्पराओं को बनाय रखने में यत्नशील थे। शास्त्रार्थ में पराजय से सारे काशी पर प्रभाव पड़ता था। अत: आजीविका

---

१. काशी की इस घटना पर—ऋषि के इस घोष पर कभी महाशय खुशहालचन्द जी 'खुरसन्द' (महात्मा आनन्द स्वामी) ने अपनी एक कविता में लिखा था :
खुरसन्द जो ईश्वर के लिए जान लड़ा दे
बजुज़ स्वामी दयानन्द कोई और नहीं है
अर्थात् ईश्वर की आज्ञा शिरोधार्य करके सत्य के लिए स्वामी दयानन्द ही जान वार सकता है। दूसरा कौन है? 'जिज्ञासु'

तथा जागीरों आदि के विचार से लोग बहुत विपरीत प्रयासों में संलग्न थे। दूसरी ओर अकेला साधन सामग्री विहीन (बे सरो सामान) अकिञ्चन साधु दयानन्द सरस्वती था।

तीन चार सौ मूर्धन्य पण्डित उनके विरोध के लिये खड़े थे। आप ऐसे समझें कि कोई भी प्रसिद्ध विद्वान् ऐसा नहीं था जिसने आपके विरोध में काम न किया हो। कुछ एक के अनुमान के अनुसार शास्त्रार्थ में ५०००० तक की भीड़ थी। पुलिस ने बैठने की ऐसी व्यवस्था की थी कि स्वामी जी के पास कोलाहल न हो। राजा के आने पर यह व्यवस्था भंग कर दी गई। स्वामी जी के किसी भी समर्थक को, सहायक को उन तक आने का मार्ग रोक लिया गया। उनके किसी भी सहयोगी का उन तक पहुँच पाना कठिन था। स्वामी जी महाराज ने सब अनियमितताओं को सहन किया। उनकी इच्छा केवल इतनी ही थी कि जो मुख्य बात होने जा रही है, वह शीघ्र हो। अन्ततः शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

**पुस्तक की क्या आवश्यकता:**— स्वामी जी ने काशी नरेश से पूछा, क्या वेद की पुस्तक आई है। बोले कि वेद पण्डितों को कण्ठाग्र है। पुस्तक की क्या आवश्यकता है? वेद व मूर्ति विषय पर पहले पं० ताराचरण से बात हुई। वह रह गये तो स्वामी विशुद्धानन्द हस्तक्षेप करने लगे। दोनों ने मूर्तिपूजा से हटकर शास्त्रार्थ को एक और दिशा देनी चाही। अभिमान से एक बार यह भी कहा, "हम सबको वेद कण्ठाग्र हैं।"

**धर्म का स्वरूप:**— स्वामी जी ने पूछा, "कहिये धर्म का क्या स्वरूप है?" विशुद्धानन्द ने कहा, "वेद प्रतिपादित फल सहित जो अर्थ है वही धर्म कहलाता है।"

**श्रुति का प्रमाण दो:**— स्वामी जी ने कहा, "यह तो आपकी संस्कृत है। इसका क्या प्रमाण? श्रुति व स्मृति कहिये।"

ठीक उत्तर न आने पर धर्म के लक्षण पूछे गये। कहा कि एक ही लक्षण है परन्तु स्वामी जी ने मनुस्मृति से दश लक्षण

बताये।

इस पर बाल शास्त्री आगे बढ़े। कहा, "हम सबने धर्म शास्त्र देखा है।"

स्वामी जी ने कहा, "अच्छा आप अधर्म का लक्षण बतायें।" इस पर वह कोई उत्तर न दे पाये। पण्डित लोग हल्ला करने लगे। सभी बोलने लग गये। स्वामी जी का भाषण वार्तालाप की यथोचित रीति से हुआ। माधवाचार्य, बाल शास्त्री, वामनाचार्य, विशुद्धानन्द सब स्वामीजी के प्रश्नों से तंग आ गये।

सभी को सामने सङ्कट दीख रहा था कि सारी काशी की नाक कटी। बचाव का उपाय सोचा जा रहा था। माधवाचार्य ने वेद के नाम से दो पत्रे सब पण्डितों के बीच में रख दिये। कहा कि यज्ञ समाप्त होने पर यजमान दसवें दिन पुराणों का पाठ सुने। ऐसा लिखा है यहाँ पुराण शब्द का अर्थ पुरानी विद्या अर्थात् ब्रह्म विद्या के लिये था जो उपनिषद व वेद में है।

**ऋषि पत्रा देखने लगेः–** स्वामी जी ने कहा, "इसे पढ़कर सुनाओ तो विचार हो जावेगा।" परन्तु विशुद्धानन्द ने स्वामी जी को ही पढ़ने को कहा। अंधेरा हो गया था। लैम्प मँगवाया गया परन्तु उसका प्रकाश ठीक नहीं (मधम) था। लैम्प वाले से ही यह चालाकी करवाई गई। उसने टिका कर अच्छी प्रकार से पकड़ी ही नहीं तो भी स्वामी जी पत्रे को देखने लगे तो विशुद्धानन्द ने चतुराई से कहा, "अब सन्ध्या का समय है। बहुत काल हो गया। इन्हें अधिक कष्ट नहीं देना चाहिये।"

**हास परिहास किया गयाः–** यह कहकर हास्यविनोद के ढंग से स्वामी जी की पीठ पर थाप मार कर कहा, "अब बैठिये। जो होना था सो हो चुका।" उधर राजा को संकेत किया और ताली बजवा दी गई। सब लोगों ने शोर मचा दिया

सब पण्डितों को एक-एक करके निरुत्तर करने वाले दयानन्द सरीखे विद्वान् के हृदय पर क्या प्रभाव होगा? जब इन

लोगों की यह अवस्था देखी जिनके भले के लिये वह मर रहा था। उसे बहुत आश्चर्य हुआ जब एकदम चालाकी से कोलाहल करवाया गया। पत्थर, ईंटें, कङ्कर, गोबर व पुराने जूते जो जिसके हाथ में आया फेंकने लगा और क्या पता क्या घटना (दुर्घटना) घट जाती यदि होरी लाल थानेदार तथा रघुनाथ कोतवाल ने सुप्रबंध न किया होता।

इन पुलिस अधिकारियों ने राजा साहेब को कहा, "आपने जो ताली बजाई, बहुत बुरा काम किया।" श्री स्वामी जी को एक कोठरी में बिठा कर गुण्डों की दण्डों से पिटाई कर दी। भीड़ को बिखेर दिया गया। इस प्रकार से अपने विचार से ब्राह्मण लोग अपनी निर्बलता पर पर्दा डाल सके परन्तु सच्च को कौन छुपा सकता है? स्वामी जी निरन्तर दृढ़ता से कार्यरत रहे। पत्र–पत्रिकाओं ने राजा साहेब व पण्डितों के व्यवहार पर शोक प्रकट करते हुए स्पष्ट लिखा, "कुछ भी हो काशी में कोई भी दयानन्द सरीखे प्रकाण्ड विद्वान् का सामना नहीं कर सकता।

यद्यपि एक लम्बे समय तक सारे पण्डित तैयारी करते रहे। शास्त्रार्थ में बहुत शक्ति लगाई परन्तु प्रतिमा पूजन के समर्थन में कोई भी पण्डित वेद का एक भी मन्त्र न दिखला सका।

## १५. हरजसराय जाये तो जाये हम न जावेंगे

प्रयाग कुम्भ के अवसर पर हाथरस के प्रसिद्ध नैयायिक विद्वान् हरजसराय जी आये। उनके शिष्यों ने स्वामी जी को कहा कि हमारे पण्डितजी कहते हैं कि दयानन्द अलग बैठा ही खण्डन कर रहा है। वह हमारे सामने हो तो एक वाक्य भी मुख से न निकले। स्वामी विशुद्धानन्द उसके गुरु भाई भी आये हुए थे। स्वामी जी ने उसके विद्यार्थियों को कहा, ऐसी सिद्धि तो हम भी देखना चाहते हैं कि वाक्य ही न निकले। उससे अवश्य भेंट करवाओ परन्तु विशुद्धानन्द भी साथ हों। विद्यार्थियों ने पण्डित जी को जाकर यह बात कह दी। उसने स्वामी जी के पास आना

स्वीकार न किया। कहा कि हम उसके पास नहीं जावेंगे।

स्वामी जी ने कहा, "कोई बात नहीं। हम चलेंगे परन्तु वे दोनों गुरु भाई इकट्ठे रहें।" पण्डित जी ने यह भी अस्वीकार कर दिया। केवल इतना ही कहा, "जब अवसर आयेगा, देख लेंगे।"

इसके पश्चात् पं० मोती राम ने दोनों से कहा, "स्वामी जी से अवश्य बात करिये।" परन्तु विशुद्धानन्द बोले, "वह विरक्त है। उससे कौन मिले?"

मोतीराम:—"आप भी संन्यासी हैं।"

विशुद्धानन्द:—"इससे क्या? हरजसराय जाये तो जाये हम न जायेंगे।"[१]

## १६. ग्राम से निष्कासन स्वीकार परन्तु शास्त्रार्थ नहीं करूँगा

स्वामी जी महाराज भ्रमण करते हुये एक ग्राम में पहुँचे। लोग दर्शनार्थ दौड़े आये तथा निवेदन किया कि रङ्गाचार्य मत का एक पण्डित मन्दिर में रहता है। वह सदा शास्त्रार्थ करने को कहता है।

ऋषिवर ने कहा है, "अच्छी बात है। उसे आज बुलवा लो।"[२] स्वामी जी वहीं रेत पर बैठ गये। वह पण्डित नहीं आया। कई व्यक्ति बार-बार बुलाने गये परन्तु वह नहीं आया। न ही शास्त्रार्थ के लिये माना।

अन्त में नम्बरदार गया कि मैं उसे अभी लाता हूँ। वह मेरे ही मन्दिर का पुजारी है परन्तु जब उसने अस्वीकार किया तो उसे

---

१. यह घटना फ़रवरी सन् १९७० की है। 'जिज्ञासु'

२. स्वामी जी महाराज का आत्म विश्वास तथा सत्य के प्रचार के लिये उनका उत्साह देखें कि वे किसी भी विद्वान् से शास्त्रार्थ करने को प्रतिपल तैयार रहते थे। कोई उनके डेरे पर आने में मान हानि माने तो यह उसके स्थान पर जाने को सदा उद्यत रहते थे। यही उनकी विनम्रता व बड़प्पन था। 'जिज्ञासु'

धमकाया कि मन्दिर से निकाल दूँगा। उसने कहा, "निष्कासन स्वीकार है परन्तु शास्त्रार्थ नहीं करूँगा" वह इतना भयभीत हुआ कि ग्राम से बाहर ही न निकला।

## १७. वह थरथर काँपता हुआ बाहर निकला

पं० रामावतार पटना कौमुदी के एक श्लोक को लेकर शास्त्रार्थ करने लगे। उसके मुख से कई शब्द अशुद्ध निकलते थे। उसके सब साथी उसे उल्लू कहने लगे। जब शुद्ध बोल ही नहीं सकते तो शास्त्रार्थ क्या करोगे? पण्डित रामलाल मिश्र आदि ने तो उसे बहुत डाँटा तथा रोकते हुए कहा, "क्यों व्यर्थ में अपनी प्रतिष्ठा खोते हो? चुप रहो।"

स्वामी जी इस पर थोड़ा समय बाद हँस पड़े औरों की भी हँसी निकल गई। रामावतार बड़ा लज्जित हुआ यहाँ तक कि उसके नयन सजल हो गये। वह थरथर काँपता हुआ बाहर निकला। इधर उधर देखकर फिर घर चला गया।[१]

## १८. रङ्गाचार्य को सामने होने का साहस ही न हुआ

काशी के पश्चात् मथुरा वृन्दावन ही मूर्तिपूजा का गढ़ है। भारत वर्ष के प्रत्येक भाग से सहस्रों स्त्री पुरुष यहाँ आकर बृजवासी बने रहते हैं। यहाँ कई मेले लगते हैं। रङ्गाचार्य की श्री दण्डी स्वामी विरजानन्द से छेड़छाड़ रहती थी। दयानन्द जहाँ मूर्तिपूजा खण्डन करने में बेजोड़ था वहीं रङ्गाचार्य मूर्तिपूजा का सर्वाधिक पोषक था। अत: स्वामी जी यहाँ सुरक्षा की स्वयं व समुचित व्यवस्था करके पहुँचे।

रङ्गाचारी की वाटिका के पीछे राधा बाग़ में तम्बू गाड़ दिया। रङ्गाचार्य को लिखित नोटिस भेज दिया कि तुम कहते थे कि प्रतिमा पूजन, कण्ठी, तिलक वेद से सिद्ध है सो दिखाओ वेद में इसका कहाँ विधान और प्रमाण है? इस चुनौती की प्रतिलिपि रङ्गाचार्य के द्वार पर भी चिपका दी गई। उत्तर दिया कि शास्त्रार्थ

१. यह घटना १८७२ ई० की है। 'जिज्ञासु'

मेल के पश्चात् होगा परन्तु, जब युक्ति व प्रमाणों से मूर्ति पूजा, कण्ठी, तिलक छाप, वैष्णव मत आदि का खण्डन आरम्भ हुआ और सब घटनाओं की सूचना उसे मिलने लगी और उधर शास्त्रार्थ की तिथि भी निकट आने लगी और वह यह भी जानता था कि स्वामी बिना शास्त्रार्थ के पीछा नहीं छोड़ेगा तो एक ही उपाय सूझा कि रोगी बनकर बैठ जावे। फिर जैसे-जैसे समय निकट आता गया, शास्त्रार्थ के लिये दबाव बढ़ता गया। रोग भी बढ़ता गया।

मुंशी महबूब मसीह चुंगी अधीक्षक एक वयोवृद्ध श्रेष्ठ स्वभाव तथा सत्य प्रेमी तथा उदार (निष्पक्ष) व्यक्ति थे। उन्होंने स्वामी जी को आकर कहा, "मान्यवर! रोग तो क्या होना है वास्तव में वह शास्त्रार्थ से डरते हैं। वह बहाना बनाते हैं।"

**रङ्गाचार्य ने कहा था:-** यही बात स्वामी जी ने अन्तिम व्याख्यान में स्पष्ट कह दी। वह भली प्रकार से जानता है कि वर्षों की कमाई हाथ से जायेगी। रङ्गाचार्य ने स्वयं ही **अपने प्रतिष्ठित चेले सेठ गोविन्द दास को कह दिया कि स्वामी विरजानन्द का शिष्य दयानन्द बहुत बड़ा विद्वान् है। उसके न्याय निपुण होने का मुझे पूरा-पूरा ज्ञान है। यदि दैवयोग से मैं पराजित हो गया तो अपने मन्दिरों से मूर्तियों को यमुना में प्रवाहित करने को तैयार रहो।**

राजा उदित नारायण सिंह को एक मित्र ने कहा कि रङ्गाचार्य तो कहता है कि दयानन्द हार जाये तो उसका क्या जाये? वह साधु विरक्त है परन्तु मैं पराजित हो गया तो सारी प्रतिष्ठा विनष्ट हो जायेगी। राजा जी स्वयं रङ्गाचार्य को मिलकर आये। वह विश्वास दिलाते थे कि वह कतई रुग्ण नहीं। इसके अतिरिक्त उसने अन्ततः स्वयं कहला भेजा कि हम शास्त्रार्थ नहीं करते। हमें इससे क्या लाभ? इसी प्रकार अन्य पण्डित भी दूर से ही डींगें मारते थे। सामने होने व मूर्तिपूजा सिद्ध करने की किसी को हिम्मत न हुई। इसका परिणाम यह निकला कि बड़े-बड़े लोगों

की मूर्त्तिपूजा से श्रद्धा हट गई।[१]

## १९. आचार्य जी बिना बोले चल दिये

श्री स्वामी जी महाराज मुम्बई से अहमदाबाद गये तो कई लोग डींग मारने लगे कि स्वामी जी चले गये अन्यथा हम शास्त्रार्थ करते। कई एक ने तो विज्ञापन भी दिया। इसलिये मन्त्री आर्यसमाज ने तार देकर बुलवाया। बस फिर क्या था सब आयें बायें शायें करने लगे परन्तु समाज ने रामानुज मत के पं० कमलनयन आचार्य को वकील द्वारा नोटिस दिया तब १२ जून सन् १८७५ को उनसे शास्त्रार्थ हुआ।

मंच पर डेढ़ दो सौ धर्म ग्रन्थ रखे गये तथा मेज़ के दोनों ओर दो कुर्सियाँ बिछाई गईं। पहले स्वामी जी पधारे तो उनको दायें ओर की कुर्सी पर बिठाया गया जो बहुत बड़ी मूर्खता थी। यह पक्षपात पूर्ण कर्म था तथापि स्वामी जी बैठ गये। अब आचार्य की प्रतीक्षा करने लगे। लोगों में विचित्र गप्पें चल रही थीं। कोई तो कहते कि स्थान यवन का है आचार्य जी कैसे आवेंगे? कोई कहते कि आवेंगे तो मध्यस्थ का विवाद खड़ा करके बेरंग लौटेंगे। सन्मान भी हो जायेगा और शास्त्रार्थ से भी बच जायेंगे।

किसी प्रकार साढ़े तीन बजे आप जैसे कैसे अपने सम्प्रदाय के ब्राह्मणों व भाटिया मारवाड़ी सेवकों के संग आये। गृहस्थ जो पहले आये थे उन्होंने बहुत अच्छी प्रकार से आपका स्वागत किया तथा बहुत सम्मानपूर्वक दूसरी ओर की कुर्सी पर बिठलाया। उनके साथ आने वाले भी इधर उधर मंच पर बैठ गये। राव बहादुर सेठ विचार दास सभापति बने। आपने श्रोताओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि आप व मैं सब प्रतिमा पूजक हैं परन्तु दयानन्द जी सिद्ध करते हैं कि हम वेद विरुद्ध हैं सो जो वह कहेंगे सब शान्ति से सुनें व समझें। हमको इससे बड़ा लाभ

---

१. यह घटना सन् १८७४ की है। इस घटना के कुछ ही समय के पश्चात् रङ्गाचार्य चल बसा। 'जिज्ञासु

होगा। इसी प्रकार कमल नयन जी मूर्तिपूजा सिद्ध करेंगे। सो भी शान्ति से सुनें सारांश जानें।

इसके पश्चात् सभापति ने जो सुनाया कि इस शास्त्रार्थ का आधार वह प्रलेख है जो ठक्कर जीवन दयाल शिवनारायण बेनीचन्द के हस्ताक्षरों से लिखा गया है। इसमें दोनों पक्षों ने स्वीकार किया है कि सारा व्यय दोनों आधा-आधा देंगे। पक्षपात रहित शास्त्री लोगों को बुलाकर निर्णय करवाया जायेगा। और वे लोग जो अभिप्राय प्रकट करें उस पर दोनों के हस्ताक्षर होंगे तथा वह प्रकाशित किया जायेगा।

दयानन्द जीते तो शिवनारायण बेनीचन्द उनका चेला हो जावेगा। अपने तिलक मिटा देवे और कमल नयन जी जीतें तो ठक्कर जीवनलाल उनका चेला होकर रामानन्दी टीका लगावे। यद्यपि यह दो व्यक्तियों का प्रलेख है परन्तु अवसर सबको अच्छा मिला है कि सत्यासत्य को जानें।

प्रलेख वालों की इसके पश्चात् जनता में कुछ चर्चा हुई और फिर कमलनयन जी बोले, "ये जो पण्डित लोग बैठे हैं किस सम्प्रदाय के हैं? क्योंकि किसी भी सम्प्रदाय वाले नहीं होने चाहिये। उपस्थिति श्रोता कहने लगे कि आचार्य जी ने यह क्या कहा? क्योंकि किसी सम्प्रदाय में न हो ऐसा ब्राह्मण कहाँ? इसके अतिरिक्त मध्यस्थ वह हो जो किसी सम्प्रदाय का न हो और वह पहले मुझे परीक्षा देवे तब इस पद पर नियत हो।

तत्पश्चात् एक पण्डित को अपने पास बुलाकर बिठाया। और दूसरे पण्डितों को कहा कि शालिग्राम तथा गीता का शपथ लेकर सच्चा-सच्चा अभिप्राय प्रकट करोगे फिर एक शास्त्री से पूछा। उसने कहा, जो ठीक होगा वहीं कहेंगे।

स्वामी जी महाराज ने बहुत विनम्रता से कमलनयन आचार्य को सत्यासत्य का निर्णय करने की विनती की परन्तु वह टालमटोल करके चल दिये। प्रबंधकों, प्रतिष्ठित सज्जनों ने बहुत कुछ कहा परन्तु आचार्य पर किसी के भी कहे का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वह बिना कुछ बोले सभा स्थल से चल दिये।

कमलनयन तो अत्यन्त विवशता वश सभा में आये।

## २०. सरदार अतरसिंह पर प्रभाव

मियाँ अहमद ज़िला रावलपिण्डी (पंजाब) के सरदार अतरसिंह लाहौर आये तो उन्होंने श्रद्धाराम फलौरी तथा अन्य लोगों से स्वामी जी की बहुत निन्दा सुनी। यह तो सब धर्म कर्म भ्रष्ट कर रहा है। ईसाइयों का नौकर है परन्तु अमृतसर में एक वैरागी भाई वीरसिंह जी विरक्त से मिले तो उन्होंने कहा, "वह तो कोई वली (देव–महात्मा) पुरुष हैं।" उस वैरागी ने कहा, "मैं तुम्हें उनके सामने करवाता हूँ परन्तु मैं साथ नहीं जाऊँगा कि कोई बात छिड़ जावे और कठिनाई आवे।" यह स्वामी जी तक पहुँचे। वहाँ बैठ गये।

थोड़े समय के पश्चात् राजा साहेब दयाल जी किशनकोट के श्रीमन्त तथा सरदार भगवानसिंह आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा कई बड़े व्यक्ति आये। व्याख्यान आरम्भ हुआ। प्रश्न करने वालों के लिये कुर्सी सामने रख दी। एक ब्राह्मण आया और साहेब दयाल जी ने कहा, "पण्डित जी आगे आजायें।" वह बोला, "ऐसी सभा में क्या आवें जो ऐसे विरुद्ध अनर्थ वचन कहते हैं कि ब्राह्मणों को गोदान का अधिकार नहीं और न इनको कोई श्लोक याद है। हम यदि गोदान न लें तो क्या धूलि मिट्टी खावें?"

स्वामी जी ने कहा, "हमने ऐसा नहीं कहा प्रत्युत यह कहा कि तुम क्योंकि विद्वान् नहीं हो अतः तुम्हारा अधिकार नहीं। तुम दान लेते हो और खाकर, मल विसर्जित कर देते हो। तुम मिट्टी न खाओ, घास खाओ।" राजा साहेब बोल उठे, "महाराज! यह आपने क्या कहा? घास तो गधे खाते हैं।" स्वामी जी ने कहा, "तुम्हारा उनका हास्य विनोद होगा। हमने साधारण सी बात कही है।"

इस प्रकार वार्तालाप वेद शास्त्र के अनुकूल हुआ। अतरसिंह अत्यन्त प्रभावित हुआ। जब उसने देखा कि वही लोग जो उसे बताते थे कि स्वामी नास्तिक है अब कहते हैं कि यह तो कोई